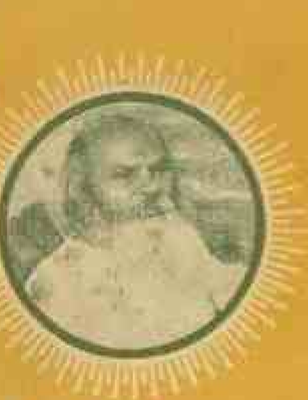

सिद्धयोग

नवम्बर १९९०

संस्थापक
योग योगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्र मोहनजी महाराज

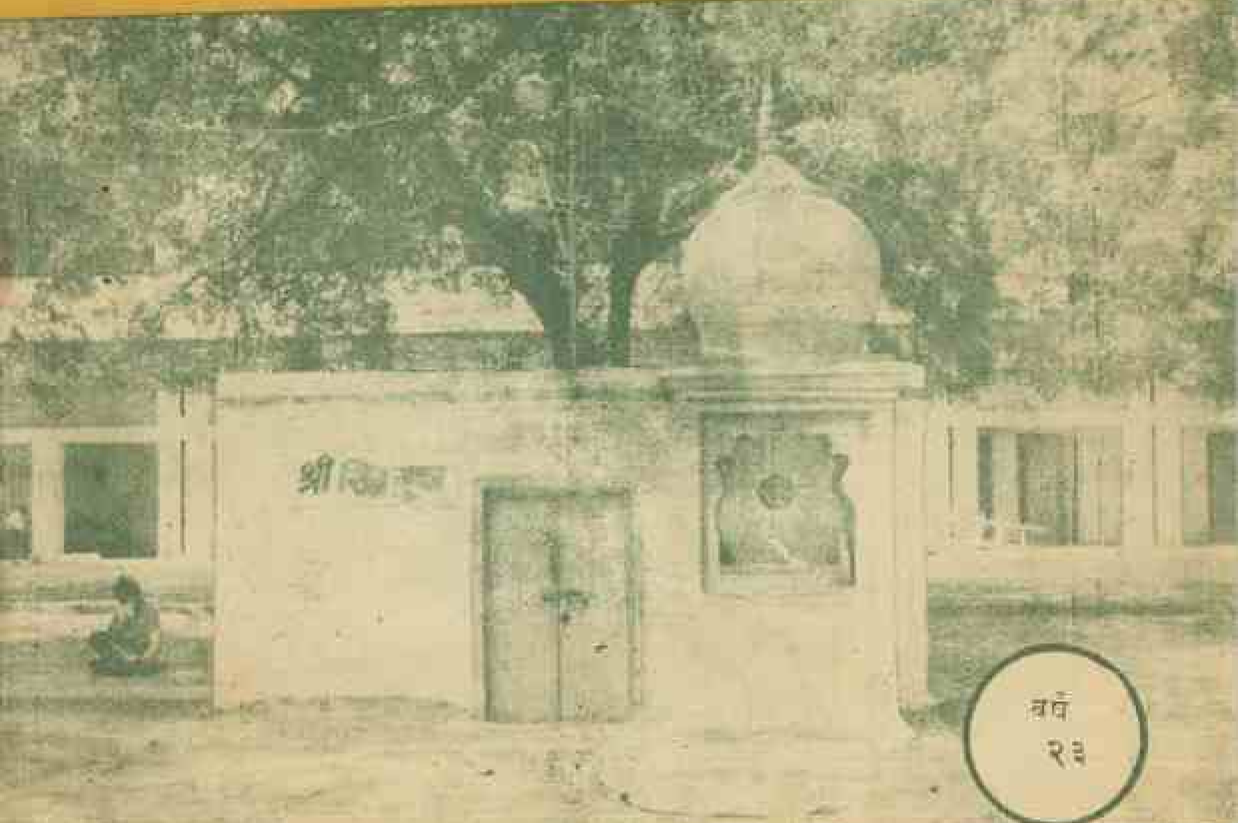

वर्ष २३

अंक ८

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन
सँवाई, आगरा

प्रकाशक
श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवांई, आगरा

सम्पादक :
श्री 'दिव्य'

नवम्बर
१९९०

इस अंक में पढ़िये—

★ कस्मै देवाय हविषा विधेम (प्रार्थना) १
★ क्लेशनिवृत्ति का साधन—योग (विशेष लेख) २
—ब्रह्मलीन योग-योगेश्वर अनंत श्री चंद्रमोहनजी महाराज
★ ईशावास्यं इदं सर्वम (सम्पादकीय) ४
★ प्रभो ! कृपालो ! करुणानिधे हे ! (श्रद्धांजलि) ६
—श्री द्वारकाप्रसाद शर्मा
★ योग एवं गुरुदेव —श्री पूरनचन्द्र पन्त शास्त्री ११
★ योग के विघ्न एवं उनके उपाय १५
—श्री गिरीशदेव वर्मा
★ श्रद्धांजलि (कविता) १७
—श्री शिवनारायण "शिव"
★ योग-साधना के अधिकारी १८
—श्री दर्शनानन्द
★ भगवान का काव्य —श्री लालचन्द २०
★ आहार शुद्धि, स्मृति और अभ्यास २३
—श्री जगदीश
★ नाभि-चालन —श्री सद्गुरुदेव जी द्वारा २५
★ लेना मेरा शत्-शत् प्रणाम (कविता) २८
—श्री नन्दकिशोरसिंह "श्याम"
★ गुरुदेव के महाप्रयाण की प्रतीति ३०
—श्री शिवनारायण उपाध्याय एम.ए., बी-एफ.
★ महात्मा चण्डीदास से पालब्रण्टन की भेंट ३२
—डा० विजयसिंह
★ अनन्य चिन्तन का फल—प्राणरक्षा ३४
—श्री केशव उपाध्याय
★ पनघट का मोह ३८
—श्री विष्णुप्रसाद व्यास
★ श्रद्धा-सुमन—श्रीमती शशिप्रभा 'मित्तल' ४१
★ योगः चित्त-वृत्ति निरोधः ४२
—डा० ऋषिराज वाशिष्ठ
★ आत्मा और परमात्मा की भिन्नता ४६
—श्री देवीसिंह सिसोदिया
★ सत्यं-शिवं-सुन्दरम —श्री महर्षि रमण ४८

वार्षिक मूल्य ४० रुपया। एक अंक का ५ रुपया।

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, मवाई (एत्मादपुर) आगरा।

वर्ष २३ अङ्क ८	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्धं स्वभावम्, मर्त्यो मृत्योर्मुखं विचरन्तो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः। तस्मात्प्रवर्तित् बहुविशदं योगशास्त्रोपदेशान्, कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः'॥	नवम्बर १९९०

कस्मै देवाय हविषा विधेम

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व

उपासते प्रशिषं यस्य देवाः

यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः,

कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

यजुः अ० २५। म० १३

अर्थात्

(यः) जो (आत्मदाः) आत्मज्ञान का दाता, (बलदाः) शरीर आत्मा और समाज के बल का देने हारा, (यस्य) जिसकी (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिसका (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, (यस्य) जिसका (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्ष सुखदायक है, (यस्य) जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देनहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें।

हमारा विशेष लेख :

क्लेशनिवृत्ति का साधन—
—योग—

ब्रह्मलीन योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

'वृक्ष से बीज और बीज से वृक्ष' के सिद्धान्तानुसार वृत्तियों से संस्कार और संस्कारों से वृत्तियों का चक्र अहर्निशि चलता ही रहता है। इसकी निवृत्ति का साधन यदि कोई हो सकता है तो वह केवल योग ही हो सकता है। इसी सिद्धांत का समर्थन भगवान पतञ्जलिदेव ने 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' सूत्र द्वारा किया है।'

प्रस्तुत लेख में योग द्वारा सभी क्लेशों का उन्मूलन कैसे किया जा सकता है तथा किस प्रकार जन्म-मृत्यु के चक्र से छूटा जा सकता है, इसे सप्रमाण समझाने का प्रयास किया गया है।

—सम्पादक

हम इससे पूर्व अपने लेखों में यह भली प्रकार से समझा चुके हैं कि हमारा इष्टादृष्ट जन्मसम्वेदनीय कर्माशय, क्लेशमूलक है। कर्माशय को जन्म देने वाले अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश आदि पाँच क्लेश ही हैं। और इन पाँचों क्लेशों का जननी अविद्या है जिससे मनुष्य के जन्म-मरण का चक्र बराबर चलता रहता है। हजारों उपाय करने पर भी जीव इस घोर सङ्कट से निकल नहीं पाता। वृक्ष से बीज और बीज से वृक्ष के सिद्धान्तानुसार वृत्तियों से संस्कार एवं संस्कारों से वृत्तियों का चक्र अहर्निशि निरन्तर चलता रहता है। इसकी निवृत्ति का कोई साधन हो सकता है तो वह केवल मात्र योग ही है। भगवान श्री पतञ्जलिजी देव ने योग की परिभाषा लिखते हुये योग-दर्शन के आरम्भ में ही "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" कह करके चित्तवृत्ति निरोध को ही बतलाया है। बहुत से लोग 'चित्तवृत्ति निरोध' का अर्थ चित्तवृत्तियों का रोकना समझ बैठते हैं किन्तु यथार्थ में अर्थ यह नहीं है। चित्तवृत्ति निरोध का अर्थ है "चित्तवृत्तिनाम् नितरांरोधः निरोधः।" अर्थात् चित्तवृत्तियों के निरोध का अर्थ चित्तवृत्तियों का समूलोन्मूलन ही है। यदि हमारे मन में वृत्तिएँ बनी रहीं तो वृत्तियों से संस्कार और संस्कारों से वृत्तियाँ यह चक्र बराबर चलता ही रहेगा। हमारा चित्त प्रख्या, प्रवृत्ति और स्थितिशील होने से त्रिगुणात्मक है और वह चित्त जैसी-जैसी स्थितियों में होता है वैसे-वैसे वृत्ति-संस्कार चक्र को बराबर बनाता चला जाता है। योगश्चित्त वृत्ति निरोधः इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए चित्त को पाँच भूमिकाओं में बाँट दिया है। इनमें से क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। इन सभी भूमिकाओं में अपने गुणात्मक विभाग के अनुसार चित्त बटा रहा करता है। कहीं पर सतोगुण की प्रधानता है, कहीं पर रजोगुण की प्रधानता है तो कहीं पर तमोगुण की प्रधानता है। यदि कहीं पर सतोगुण चमक उठता है तो कालान्तर में वही चित्त समाधि के बल से निरुद्ध हो जाया करता है। मूढ़ावस्था के चित्त में तमोगुण की प्रधानता रहती है और रजोगुण और तमोगुण गौड़ हो जाया करते हैं। क्षिप्तावस्था के चित्त में रजोगुण की प्रधानता हो जाती है और तमोगुण सतोगुण गौड़ हो जाते हैं। विक्षिप्ता अवस्था के चित्त में

सतोगुण प्रधान हो जाता है और रजोगुण व तमोगुण गौड़ हो जाते हैं। एकाग्रावस्था के चित्त में रजोगुण और तमोगुण न के बराबर रहते हैं और सतोगुण देदीप्यमान होकर चमक उठता है। इन चारों स्थितियों के अन्दर चित्त जैसी-जैसी भूमिकाओं से निकलता है वैसे-वैसे अविद्या-जनित वृत्ति संस्कार चक्र को बनाता रहता है अर्थात् मूढ़ावस्था का चित्त अंधकार प्रधान मूढ़ वृत्ति संस्कार चक्र को बनाता है। क्षिप्तावस्था का चित्त रजोगुण प्रधान और विक्षिप्तावस्था का चित्त सतोगुण प्रधान तथा एकाग्रावस्था का चित्त उज्ज्वल सतोगुण प्रधान दैविय वृत्ति संस्कार चक्र का कारण बनता है। केवल मात्र निरोधावस्था एक ऐसी अवस्था है जिसमें जाकर के सभी प्रकार के वृत्ति-संस्कार चक्रों का विलय हो जाया करता है। भगवान पतञ्जलिदेव ने योग-दर्शन में 'योगश्चित्त-वृत्ति निरोधः' इस सूत्र का निर्माण किया। हमारे सभी धर्माचार्यों और व्याख्याताओं ने निरोधः समाधि और समाधि समतावस्था जीवात्म परमात्मनः कह करके समाधि को ही माया के बीच से परे निर्बीज का रूपक दिया है। किन्तु भगवान व्यासदेव ने सम्प्रज्ञात समाधि को भी योग बतलाया है उसका कारण केवल मात्र एक ही है, सम्प्रज्ञात समाधि में साधक उस रास्ते पर अग्रसर हो जाता है, इसलिए सम्प्रज्ञात समाधि भी वृत्तियों के उपशमन की एक सीढ़ी है। योग-दर्शन के साधनपाद में दृश्य को भोग और अपवर्ग का दाता माना है।

प्रकाश क्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रि-
यात्मकंभोगापवर्गार्थं दृश्यम्।

अर्थात् सतोगुण-रजोगुण और तमोगुणात्मक चित्त एवं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश यह पाँचों महाभूत [और पंचमहाभूतों की नासिका जिह्वा, आँखें, त्वचा और] कर्णेन्द्रिय आदि पाँचों ज्ञानेन्द्रिय-दृश्य इन सबके समुच्चय से बनता है और ये दृश्य ही एक साधक के लिए भोग और अपवर्ग का दाता हुआ करता है। जो लोग इस दृश्य को पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के बाहरी भाग से देखते रहते हैं, वे लोग भोगों के भोक्ता बने रहते हैं एवं वृत्ति संस्कार चक्र को बराबर बनाते रहते हैं। आँख रूप को देखती है। रूप को देखकर सुन्दर रूप है तो उसमें आसक्ति पैदा कर लेती है कुरूप है तो घृणा पैदा कर लेती है। अच्छे और बुरे संस्कार दोनों ही जन्म-मरण के कारण बन जाते हैं। और इसी प्रकार रसना अच्छे पदार्थ ग्रहण करती है तो राग को बढ़ा लेती है और वही पदार्थ कटु तिक्त व किसी प्रकार से घृणायुक्त होते हैं तो उसमें द्वेष पैदा कर लेती है। इसी प्रकार से त्वचा अच्छे स्पर्शों में सुख एवं बुरे स्पर्शों में दुःख। इसी प्रकार कर्णेन्द्रिय अच्छे शब्दों के सुनने में राग और कर्ण कटु शब्द सुनने से द्वेष पैदा करके क्लेश मूलक कर्माशय को बना लेती है। इसके अतिरिक्त यही सारे दृश्य जो पांचों ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा देखे समझे और सुने जाते हैं—इन सब को हम इन्हीं इन्द्रियों के भीतरी भाग से देखते और सुनते हैं तो यही वृत्ति संस्कार चक्र जिसको बाहर से देख सुन करके हमने जन्म-मरण को देख लिया और यही सब दृश्य यदि अन्तर्दृष्टि से देख लिया जाय तो यह सम्प्रज्ञात योग का रूप धारण कर लेता है जिसका संकेत अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण गीता में इस प्रकार करते हैं—

या निशा सर्व भूतानाम्
तस्यां जाग्रति संयमी।

(शेष पृष्ठ ४९ पर पढ़िए)

सम्पादकीय :–

ईशावास्यं इदं सर्वम्

क्षण-क्षण स्मरणीय और पल-पल वन्दनीय परम श्रद्धेय योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज का जन्म-दिवस-समारोह गत विजय-दशमी दिनाङ्क २९ सितम्बर सन् १९९० ई० को सवाई स्थित श्री सिद्ध-गुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र के विशाल प्रांगण में अतीव उल्लास-उत्साह और भक्ति भावपूर्ण वातावरण में मनाया गया। आश्रमस्थ सभी ब्रह्मचारियों ने और आश्रम की उत्तराधिकारिणी संचालिका योगिनी माता कौशल्यादेवी ने तथा गुरुदेवजी एवं आश्रम ग्राम से सम्बन्धित अन्य अनेक प्रतिष्ठित योग-साधक गुरु-भाई-बहनों के सहयोग एवं सद् प्रयत्नों के फलस्वरूप समा-रोह का सभी कार्यक्रम व्यवस्थित और सुचारु रूपेण आरम्भ एवं सम्पन्न हुआ। कई हजार शिष्यों ने इस समारोह में सम्मिलित होकर अपने गुरुदेव के छायारूप की अर्चना और पूजा करके अपने को कृतार्थ बनाया। यह पहला जन्म-दिवस समारोह रहा जो गुरुदेवजीकी स्मृति में उनके आश्रम पर उनके प्रत्यक्ष दिव्य-दर्शन के अभाव में मनाया गया।

वैसे भगवान गुरुदेवजी का यह जन्म-दिवस समारोह उनकी स्वीकृति प्राप्त करके उनके श्रद्धालु शिष्यों द्वारा विभिन्न स्थानों और नगरों में अत्यधिक उल्लास और उत्साहपूर्वक बड़ी धूमधाम से प्रति वर्ष विशाल योग-प्रचार कार्यक्रम के साथ मनाया जाता था। बनारस और झाँसी में वहाँ के योग-प्रचार मण्डलों के द्वारा जो जन्म-दिवस समारोह अभी तीन-चार वर्ष पूर्व मनाये गये थे, बड़े ही उल्लेखनीय और दर्शनीय समारोह थे, जिनमें दूर-दूर के प्रदेशों और नगरों से भारी संख्यामें योग-प्रेमी भाई-बहनों ने आकर गुरु-चरणों के दर्शन एवं पूजन का लाभ उठाया था। इन दोनों ही समारोहों के अवसर पर आयोजित संगीत तथा वादन आदि के कार्यक्रम भी ऐसे थे, जिनमें अखिल भारतीय ख्याति के कलाकारों ने भाग लेकर अपार जन-समूह को अपने वाद्य-संगीत के कला-कौशल से भाव-विभोर बनाते हुए अविस्मरणीय आनन्द रस की वर्षा की थी। भारी संख्या में प्रेमी श्रद्धालु शिष्यों का दूर-दूर से आकर सम्मिलित होना तब इस बात का परिचायक रहा कि अपने गुरुदेवजी के प्रति जन-मन में कितना ऊंचा सम्मान, और कितना गहरा श्रद्धाभाव समाहित है। उन सारे कार्यक्रमों की सविधि सम्पन्नता का अवलोकन करने वाले तटस्थ दर्शक इस सच्चाई का प्रत्यक्ष दर्शन कर पाये थे कि भारत की वैदिक गुरु-शिष्य परम्परा अब भी यथावत्

जीवित है। आवश्यकता है इस जीवंत-परम्परा को इसी रूप में और आगे बढ़ाने की। 'गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः' की सूक्ति इन बनारस, झांसी और सवाई आश्रम में मनाये जाने वाले जन्म-दिवस समारोहों में प्रत्यक्ष रूप में सभी को देखने को मिलती रही।

इस वर्ष यह पहला अवसर रहा, जब श्रीगुरुदेवजी के अभाव में सवाई आश्रम पर उनके जन्म-दिवस का पर्व मनाया गया। देशमें राजनैतिक दुष्चक्रों के फलस्वरूप अगर ट्रेनों और बसों द्वारा यातायात की सुविधा-असुविधा के रूप में सामने न आई होती तो आगत श्रद्धालु शिष्य-समूह और भी अधिक संख्या में यहाँ एकत्र होता। इस असुविधा के बावजूद भी जितनी संख्या में श्रद्धालु भाई-बहन यहाँ आ सके, उसे पर्याप्त ही कहा जा सकता है। श्रीगुरुदेव भगवान का मोहक और प्रेरक दिव्य-दर्शन इस वर्ष इन्द्रिय ग्राह्य तो नहीं था, किन्तु सभी की हृदय भूमि पर ध्यानालोक में वे हँसते-विहँसते दिखलाई पड़ रहे थे—विशेषकर उनको जो दिव्य दृष्टि से देखने की योग्यता रखते थे।

आश्रम-रज के कण-कण में लता, वल्लरियों और छोटे-बड़े वृक्षों के पत्ते-पत्ते में रत-रेशों में गुरुदेव की सिद्ध-साधना का रस यों तो यहाँ हर क्षण ही प्रवाहित रहता है, किन्तु २६ सितम्बर को उनके पावन जन्म-दिवस के अवसर पर तो यह अपनी अनुपम, आभा में अधिक मात्रा में बह रहा था जिसे सभी मननशील मनीषी मौनभाव से पी-पीकर अपनी अन्तःतृषा को तृप्ति प्रदान कर रहे थे। साथ ही परमब्रह्म में लीन हुए अपने गुरुदेव की वाणी से निःसृत यह कतिपय वाक्य-बिन्दु भी श्रद्धालु शिष्यों के कानों में परोक्षत: क्रमबद्ध रूप में गूँज रहे थे :—

"मेरे प्यारे बच्चो ! मैं तुमसे न अलग हूँ न दूर हूँ जब भी तुम अनन्य भाव से मुझे स्मरण करोगे, तभी अपने हृदय-तल में निश्चित रूप से मेरी उपस्थिति की तुम्हें अनुभूति होगी। साथ ही अपनी दुरूह जीवन-समस्याओं के सम्बन्ध में महाप्रभुजी के अनुग्रह से तुम्हें दिशा-बोध भी प्राप्त होगा। मेरे और तुम सबके बीच के यह दैवी सम्बन्ध स्थायी बने रहें, इसके लिए तुम्हें अपनी श्रद्धा को अत्यधिक पावन और उजागर बनाकर रखना होगा। श्रद्धा-रहित जीवन कभी भी श्रेयस्कर जीवन नहीं बना करता। दूसरा महत्वपूर्ण सन्देश जिसे मैं, तुम, सब योग-साधकों को देना चाहता हूँ वह है—

सुयत्ना लभ्यते कीर्ति दुर्भलादपरास्तथा।

अर्थात्—उत्तम प्रयत्न करने से ही कीर्ति प्राप्त होती है दुष्प्रयत्नों को आधार बनाकर कार्य करने से तो अपयश तथा भर्त्सना मिला करती है

इसलिए तुम्हें अपनी साधना सदा सद्-विचारों और सद्प्रयत्नों को ही आधार बनाकर कार्यों में प्रवृत्त होना चाहिए।

"लला! मेरे बहु-संख्यक आदेशों में से तीसरा आवश्यक बिन्दु जो तुम्हें हर क्षण याद रखना चाहिए वह है—त्याग और वैराग्यके अभ्यास को उत्तरोत्तर दृढ़ करते रहना। योगी जीवन की सफलता का महत्वपूर्ण आलम्बन तप, त्याग और वैराग्य की व्रत-निष्ठा ही होती है।

"इस निष्ठा को बलवान बनाने के लिए यजुर्वेदीय ईशउपनिषद् का नीचे लिखा मन्त्र विशेष रूप से तुम्हारे नित्य के मनन और पठन-पाठन का विषय होना चाहिए—

ईशावास्यमिदं सर्वम् यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध: कस्यस्विद्धनम्॥

मन्त्रका आशय है कि इस संसार में जो कुछ भी दृश्यमान है, उसमें सबमें ईश्वर का आवास है। यहाँ सब कुछ उसकी ही सम्पदा है, सब पर उसी का स्वामित्व है। तुम्हारा अपना यहाँ कुछ भी नहीं है। इसलिए उस पराई संपदा या सम्पत्ति पर तुम्हें कभी भी लालचभरी दृष्टि नहीं डालना चाहिए। अवश्य ही तुम्हें अपनी जरूरत के लिए त्यागपूर्वक उसके उपयोग या उपभोग का अधिकार है। पराई सम्पदा के दुरुपयोग या उसको अपना बनाकर उस पर बैठ जाने का कोई अधिकार किसी को नहीं है।

"इस मंत्र की वास्तविकता को समझकर तुम्हें अपने जीवन अपने परिवार, अपनी धन-दौलत और देह-गेह सबको पराया समझकर ही उसका उपयोग करना चाहिए। यहाँ का सब कुछ पदार्थ तुम्हें दूसरों का भला करने के लिए ही प्राप्त होता रहा है। इसीलिए तो यज्ञवेदी पर कतिपय आहुतियाँ देने के बाद हमको 'इदन्न मम' यह मेरा नहीं है, यह वाक्य बार-बार बोलना अनिवार्य रहता है। सृष्टि के सारे पदार्थ अपने लिए नहीं जीते हैं। जीते हैं दूसरों का भला करने के लिए। कौन नहीं जानता है कि सूर्य का प्रकाश, हवा का अहर्निश बहते रहना, पानी का बरसना और नदियों द्वारा समुद्र में पहुँचना, सब कुछ इन भूतों का अपने लिए नहीं, किन्तु सृष्टि के जीवों की जीवन-रक्षा के लिए ही हुआ करता है। हमारे महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज काय-निर्माण करके परार्थ ही धराधाम पर आये थे। उन्होंने लुप्त हुई योग-विद्या का फिर से व्यापक प्रचार किया। इसलिए ही किया कि इस भोग रूप संसार में आर्त और पीड़ित प्राणियों के उद्धार का एक-मात्र उपाय योगपद्धति के अनुसार जीवन-निर्माण ही हो सकता है।

(● शेष पृष्ठ ८ पर)

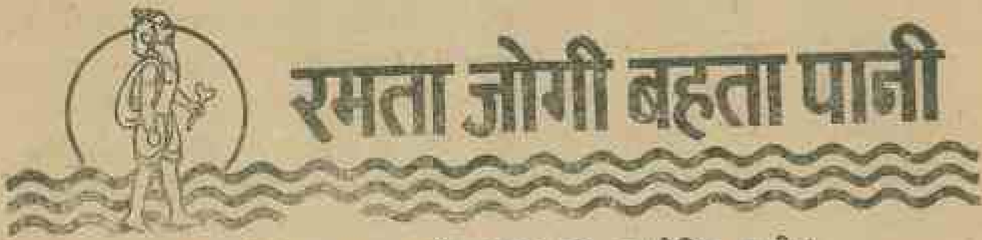

रमता जोगी, बहता पानी, दोनों की उद्घोषित बानी !
'चलने से जो रुक जाता है, कीचड़ बन जाता वह पानी' ! —दिव्य

कबिरा खड़ा बजार में

नदी के किनारे अपने प्रवास-स्थल पर योगी रमताराम ने उपदेश देने की अपेक्षा सभी एकत्र हुए श्रोताओं को ध्यान में बैठ जाने का आदेश दिया। योगीजी का आदेश पर सभी ध्यानस्थ होकर बैठ गये। दो घण्टे के अन्तराल के बाद एक ही आसन पर बैठकर जब वे सब ध्यान से उठे तो उनमें से एक को अपने मंच के समीप बुलाकर योगीजी ने कहा कि तुमको ध्यान में जो कुछ भी दर्शन हुआ हो वह सबको बताओ।

× × ×

खड़े हुए उस अधेड़ उम्र के श्रोता ने कहा—गुरुवर और साथियो सुनो ! मैं जैसे ही ध्यान की गहराई में उतरा, मुझे बाबा कबीर के दिव्य रूप का दर्शन हुआ। वे अपने एक हाथ में एक लकड़ी की लकुटिया और दूसरे में लम्बा-सा तख्ता लिए हुए थे। मुझसे उन्होंने कहा, इस पर जो लिखा है उसे पढ़ो। मैंने पढ़ना शुरू किया तो उनका अपना ही रचा हुआ यह दोहा पढ़ने में आया—

कबिरा खड़ा बजार में लिये लकुटिया हाथ।
जो घर फूंके आपना, चले हमारे साथ॥

× × × ×

मैंने कबीरजी से कहा—महाराज ! जो कुछ लिखा हुआ था, वह मैंने पढ़कर सुना दिया। पर मैं यह नहीं समझ पाया कि 'अपना घर फूँककर' उसे भस्मीभूत करके कौन आपके साथ चलने की मूर्खता करेगा ? आप बाजार में खड़े होकर ही नहीं, अपनी ऊँची अटारी पर चढ़कर भले ही चिल्लाते रहें पर कोई ऐसी नादानी करने वाला नहीं है, जो घर फूंक कर आपके पीछे चले। आप अपने इस उपदेश को अपनी ही पिटारी में रख लीजिये। हाँ घर फूँकने की जगह घर भरने की बात आप कहें तो हम जरूर चले चलेंगे तथा और भी लोगों की भीड़ को साथ में ले चलेंगे।

× × × ×

यह सुनकर कबीरजी मुस्कराये और बोले—तुम बिल्कुल ना समझ बच्चे मालूम पड़ते हो ! अरे, यह उपदेश तो कविता की भाषा है। कविता में उसके मर्म को समझा जाता है, शब्दों पर ध्यान नहीं दिया जाता। कबीरजी ने आगे कहा—

सुनो मेरे भोले बच्चे! घर फूँकने का मतलब मिट्टी का घर-घूरा नहीं है, बल्कि यहाँ मतलब है देह रूपी गेह का। इस देह रूपी गेह में जो तुमने दुर्व्यसनों, दुराचारों और दुर्विचारों का जो अम्बार लगा रखा है। काम, क्रोध, लोभ, मोह का, ईर्ष्या और राग-द्वेष, स्वार्थ और विरोध का जो कूड़ा-करकट भर रखा है, जब तक तुम इसे जलाकर राख के ढेर में नहीं बदल देते, तब तक तुम साईं के दरबार में पहुँचने के रास्ते पर एक कदम भी रख पाने की योग्यता नहीं प्राप्त कर पाओगे। घर में समाये इस कबाड़े को जलाये बिना श्रेय और प्रेय दोनों में से एक भी नहीं मिल पायेगा। यही रहस्य मेरे इस दोहे में समाया हुआ है।

× × × ×

और सुनो बेटे! मैं सिद्धयोगी हूँ। तुम्हें भी सिद्ध-मार्ग पर ले चलना चाहता हूँ। इसीलिए एक महा सत्य का दर्शन मैंने तुम्हें इस दोहे के द्वारा कराया है।

× × × ×

बाबा कबीर ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा—''शायद तुम यह भी जानना चाहोगे; 'कैसे किस प्रकार जलायें हम अपने घर में आघुसे इस कबाड़े के ढेर को।' इसका उपाय भी मैं तुम्हें बता रहा हूँ। यह दुर्गुण और दुर्विचारों का सारा कबाड़ा अविद्या और अज्ञान जन्य है, जो तुम्हारे कुसंस्कारों, कुसंगति और तुम्हारे प्रमाद के कारण आकर जमा हो गया है, तुम इसका नाश ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित करके ही कर सकोगे। जैसाकि योग-योगेश्वर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने भी गीता में कहा है—

ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः।

ज्ञानाग्नि के द्वारा ही वासनापूर्ण कर्मों का दुर्विचारों का नाश हुआ करता है। तुमको भी ज्ञान प्राप्त करके इस अज्ञान के सारे कबाड़े को जलाने का उपाय करना चाहिए, ऐसा करके ही तुम सिद्धमार्ग पर चल सकने का लाभ ले सकने योग्य बन सकोगे।

———

पृष्ठ ६ का शेष—ईशावास्य इदं सर्वम्

यह रहे कुछ महत्वपूर्ण सन्देश, जिनकी अनुभूति योग-योगेश्वर श्री गुरुदेवजी महाराज के जन्म-दिवस समारोह पर आयोजित सवाई धाम में एकत्र हुए गुरु भाई-बहनों को होती रही।

सवाई आश्रम को 'सिद्धपीठ तो स्वयं श्रद्धेय श्री गुरुदेवजी ही अपने अलौकिक व्यक्तित्व और कृतित्व से बना गये हैं। आवश्यकता मात्र अब इतनी है कि हम सब जो उनके सद्-शिष्य होने का गौरव प्राप्त किये हुए हैं—तप, त्याग, वैराग्य और प्रेमपूर्ण अनुशासन के पालन का व्रत लेकर अपने कर्त्तव्य का सही अर्थों में निर्वाह करें। "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्त देवेतरे जनाः।" भगवान श्रीकृष्ण के इस उपदेश को हृदय में धारण करके अगर हम कर्त्तव्य-पथ पर आगे बढ़ेंगे तो निश्चय ही अन्य भी हमारा अनुसरण करेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

—सम्पादक

श्रद्धांजलि

प्रभो ! कृपालो ! करुणानिधे हे !

रचनाकार—श्री द्वारकाप्रसाद शर्मा

को त्वाश्रमे नाम समागतेसु, अस्मत्सु, युष्मत्सु तथापरेषु ।
स्निग्धां च करुणापरकां च दृष्टिं, न्यक्षिष्यति किं भवता विना प्रभो ।।१

हे प्रभो ! अब हमारे, तुम्हारे या अन्य लोगों के आश्रम आने पर स्नेह भरी और करुणामयी दृष्टि से आपके न होने पर हमें कौन देखा करेगा !

नैवास्ति विश्वासलवोपि मे हृदि, संत्यज्य नो देव सदैवितो गतः ।
कुतो गतः किं कथमत्रतो गतः, अनाथयन् नो जगतामधीश्वर ।।२

हे गुरुदेव ! मेरे मन में यह लेशमात्र भी विश्वास नहीं होता कि आप हमें छोड़-कर यहाँ से सदा के लिये चले गए हैं । जगत के अधीश्वर हमें अनाथ करते हुए आप कहाँ और क्यों यहाँ से चले गये हैं ?

स्मरामि तावत् विगतं सुकालं, आगत्य, स्थित्वा, गमनाय याते ।
शिष्यान् स्वकीयान् प्रभुरस्मदीय, "आशीर्वादोक्ति" प्रयच्छति स्म ।।३

उस बीते हुए सुन्दर समय का मैं स्मरण कर रहा हूँ, जब हम श्री गुरुदेव के चरणों में आश्रम में आकर यहाँ ठहरकर और यहाँ से प्रस्थान करते समय हमारे प्रभु श्री गुरुदेव अपने प्रिय शिष्यों को "आशीर्वाद है" (ऊँची ध्वनि से) दिया करते थे !

यदा यदा वै विपदोऽभितस्त, प्रपेदिरे नो न भयावहानि ।
मनस्सु नो भावमयं समासस, सामर्थ्यवन्तं स्म गुरुं प्रपन्नाः ।।४

हमें जब जब चारों ओर से विपदायें घेर लेती थीं, तब भी हम उनसे भय नहीं माना करते थे । हमारे मनों में तो यही एक भाव समाया था कि हम एक सामर्थ्यवान गुरु की शरण में हैं (ये विपदायें हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती हैं ?

कोऽस्मान् "लला" नाम गिरा मधुक्तया, संबोधयन् क्लेशमपाकरिष्यति ।
कुतो गतः सः परमेश्वरो नः मृतप्रायशिष्यान् स्वसमान् करिष्यन् ।।५

अब हमें कौन 'लला' इस मिठास भरी वाणी से सम्बोधित कर हमारे क्लेश का निवारण किया करेगा । हमारा वह 'परमेश्वर' कहाँ चला गया है जो मृतप्राय शिष्यों को भी अपने सरीखा कर दिया करता था या करने वाला था !

सदैव सन्मार्गपरान् प्रकुर्वन्, स्वीयैर्वचोभिर्निज कर्मभिस्त्व ।
आलोकस्तम्भ इव विद्यमानः, कुतो गतो नो हृदयप्रकाशः ।।६

अपने वचनों तथा अपने क्रिया कलापों द्वारा जो हमें सदैव सन्मार्ग में प्रवृत्त रहने के लिये प्रेरित करते रहे और जो एक प्रकाश स्तम्भ की भाँति हमारे मध्य रहे, वे हमारे हृदयों को प्रकाशमान करने वाले कहाँ चले गये हैं !

स योगिनां योगिवर: समासीत्, स सिद्धपुरुषेषु प्रसिद्ध एव ।
साक्षात् प्रभु: स: शिव-विश्वनाथ:, कुर्वन्ननाथान् स कुतो गतोऽद्य ।।७

वे योगियों में योगिश्रेष्ठ थे, वे सिद्ध पुरुषों में प्रसिद्ध रूप में प्रख्यात रहे । वे साक्षात् प्रभु रूप में, शिव रूप में विश्वनाथ थे, वे हम सबको अनाथ करते हुए आज कहाँ चले गए हैं !

संस्थाप्य वर्चस्वमतीव नून, स्वीयं सवांई स्थ गुफागृहेषु ।
विश्रम्य सुचिरं, विविधस्थलेषु, स्मृति पुनः स: प्रभुर्रेव याति ।।८

अपने 'सवांई' स्थित सिद्ध गुफा आश्रम में अपने उत्कृष्ट वर्चस्व को प्रस्थापित कर तथा अन्यान्य अनेक स्थलों में भी पर्याप्त काल तक विश्राम कर चुकने के पश्चात्, हमारे प्रभु श्री गुरुदेव हमारे स्मृति-पटल पर बार-बार आ विराजते हैं ।

धन्या जना ये प्रभुपादसेविन:, पुण्या जना ये शरणोपपन्ना: ।
वन्द्यास्तु ते ये वचनोपजीविन:, निरन्तर ते प्रभुवाक्निषेविण: ।।९

श्री प्रभु के चरणों की सेवा में संलग्न जो भी जन रहे वे धन्य हो गये हैं । उन प्रभुजी की शरण में जो भी जन आ गये, वे पुण्यवान हैं । वे जन जो प्रभुजी के वचनों के ऊपर आश्रित रहकर तदनुसार आचरणशील हैं वे वास्तव में वन्दनीय हैं ।

कुतो न यातस्तु भवान् प्रभुर्न:, संव्याप्य द्यावापृथिवीं स्थितो भवान् ।
यातास्तु चरणा भवदीय यत्र, त एव तीर्थाधिस्थला भवन्ति न: ।।१०

हमारे प्रभु आप कहीं नहीं गये हैं । आप तो इस धरणी तथा अन्तरिक्ष में व्याप्त हो गये हैं । आपके चरणारविन्द जहाँ-जहाँ भी पड़े हैं, वे सब स्थल हम सबके लिए तीर्थ-स्थलों से भी अधिक पावन स्थल हो गये हैं।

या या गिर: श्रीमुखतस्तु भवतां, यदा यदा वे, निस्सृता नु श्रेयसे ।
तदीयवाचां प्रतिशब्दमस्ति, मन्त्राधिकं नो परिपालनाय ।।११

हे गुरुदेव ! आपके श्रीमुख से जब-जब जो वचनामृत निस्सृत हुए हैं वे सब हम सबके कल्याण के लिये ही निश्चित रूप से हुए हैं । उन सब वचनों का एक-एक शब्द हम सबके लिये मन्त्र से भी अधिक पालन करने योग्य हो गया है ।

प्रभो ! कृपालो ! करुणानिधे हे ! सहस्रकृत्वान् नु मदीय नमनान् ।
स्वीकृत्य, स्वान्ते चरणान्तिके वा, यथेच्छमापन्नमथिप्रसीदताम् ।।१२

हे प्रभो ! हे कृपालो ! हे करुणानिधे ! सहस्रों बार मेरे प्रणामों को स्वीकार करें । मुझे आप चाहें तो अपने हृदय में अथवा चरणारविन्द के समीप, जहाँ आपकी इच्छा हो, इस शरणागत (मुझ) को स्थान प्रदान कर मुझे कृपा रूपी प्रसाद से अनुगृहीत करें ।

● श्री पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री

योग एवं गुरुदेव

मनुष्य शरीर अत्यन्त दुर्लभ है, देवता भी इसके लिए तरसते हैं। मानव शरीर से ही जीव योग-साधना रूप पुरुषार्थ करके आवागमन के चक्र से छूट सकता है। योग ही एक ऐसा साधन है जिसे अपनाकर मानव शरीरधारी जीव जन्म-जन्मान्तर से बने आ रहे कर्माशय को नष्ट करके पाप-पुण्य से मुक्त होकर अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। यही मनुष्य जीवन की सार्थकता एवं जीव का परम पुरुषार्थ है। बिना योग को अपनाये मनुष्य संसार-चक्र से नहीं छूट सकता यह एक अटल सिद्धान्त है। योग के आदि प्रवर्त्तक अखिल लोकनायक योगेश्वर श्रीकृष्ण ने योगसिद्धि रूप तत्त्व ज्ञान को पवित्रतम, गुह्यतम एवं मोक्षदायी बताते हुए उसकी प्राप्ति के दो मुख्य उपाय बताये हैं— (१) अभ्यास और वैराग्य रूप साधना, (२) सिद्ध-कृपा। जैसे—

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं,
तत्पर: संयतेन्द्रिय:।
ज्ञानं लब्ध्वा परां,
शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥
(गीता ४/३९)

जितेन्द्रिय, साधन परायण तथा श्रद्धालु व्यक्ति को ही ज्ञान की प्राप्ति होती है तथा ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर वह तत्काल ही भगवत्प्राप्ति रूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

दूसरा उपाय है सिद्ध-कृपा। इस संबंध में अखिल लोकनायक जगदात्मा श्रीकृष्ण ने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन के माध्यम से योग के जिज्ञासु साधकों के लिए एक सरल तथा श्रेष्ठ मार्ग प्रशस्त किया है। यथा—

तद्विद्धि प्रणिपातेन,
परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं,
ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिन:॥
(गीता ४/३४)

हे अर्जुन! उस ज्ञान को तू तत्वदर्शी महापुरुषों की शरण में जाकर सीख। उनको दण्डवत्-प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से तथा निष्कपट भावसे जिज्ञासा प्रकट करने पर परमात्म तत्व को भलीभांति जानने वाले वे ज्ञानी महात्मा तुम्हें तत्त्वज्ञान का उपदेश देंगे। कठोपनिषद् में भी कहा गया है—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य,
वरान्निबोधत।
क्षुरस्यधारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गंपथस्तत्कवयो वदन्ति॥

अरे मनुष्यो! तुम लोग प्रमादवश चिरकाल से अज्ञानरूपी निद्रा में सोये हुए हो। अब भी समय है, शीघ्रता से उठो, जागो और तत्व-दर्शी सन्तों की शरण में जाकर उनसे आशी-र्वाद प्राप्त करके उन्हींसे ही इस आत्म-विद्या (योग-विद्या) को सीखो, क्योंकि बिना गुरु के

योग-मार्ग पर चलना तलवार की तीखी धार पर चलने के समान कठिन है। ऐसा ज्ञानी महापुरुष अपने अनुभव के आधार पर बतलाया करते हैं।

साधना चाहे किसी प्रकार की क्यों न हो, योग-मार्ग के पथिक को कदम-कदम पर गुरु की आवश्यकता रहती है। बिना गुरु के वह अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भव-सागर पार करने के लिए मनुष्य शरीर को एक सुदृढ़ नौका बताया है। ईश्वरानुग्रह को अनुकूल वायु तथा गुरुदेव को कर्णधार यानी कुशल मल्लाह बताया गया है। जैसे—

नर तन भव बारिधि कहुँ बेरो।
सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
कर्णधार सद्गुरु दृढ़ नावा।
दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिन्दक मन्दमति आत्महा गति जाइ॥

श्रीमद्भागवत पुराण में भी यही बात निम्नलिखित श्लोक में कही गई है—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं,
प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारम्।
मयाऽनुकूलेन नभस्वतेरितं,
पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा॥

पहले तो मनुष्य शरीर मिलना ही दुर्लभ है, उसकी किसी प्रकार से प्राप्ति हो गई। ईश्वर-कृपा से साधना के अनुकूल वातावरण मिल गया और ईश्वर-कृपा से ही कर्णधार सद्गुरु भी मिल गये, इतना हो जाने पर भी जो अभागा भव-सागर को पार करने के लिए प्रयत्न नहीं करता, वह आत्मघाती है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

बुद्धिमत्ता तो इसी में है कि मनुष्य इस स्वर्णिम अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाये। एक क्षण भी व्यर्थ न खोये और तत्परता से योग-साधना में जुटकर अपने देवदुर्लभ मानव जीवन की सार्थकता सिद्ध करले, किन्तु सद्गुरु की कृपा के बिना उसके इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती। इसके लिए उसे गुरुचरणों में अनुरक्त होना ही पड़ेगा, क्योंकि—

बिन गुरु भवनिधि तरइ न कोई।
जो बिरञ्चि शङ्कर सम होई॥

चाहे कोई किसी भी क्षेत्र का विद्यार्थी क्यों न हो, उसे गुरु का सहारा लेना भी पड़ता है; फिर योग-विद्या तो है ही गुरुगम्य, अतः उसकी प्राप्ति के लिए गुरु-भक्ति की नितान्त अपेक्षा रहती है।

गुरुदेव के चरण-कमलों में विनीत भाव से बैठकर उनके वचनामृत का पान करना, निरभिमान होकर उनकी सेवा करना, उनकी प्रत्येक आज्ञा का उत्साहपूर्वक तत्परता से पालन करना, गुरु-प्रदत्त मन्त्र का अधिकाधिक जप करना, गुरु-मन्त्र में अक्षर बुद्धि न रखना तथा गुरुदेव में मनुष्य बुद्धि न रखना आदि सभी बातें गुरु-भक्ति के अन्तर्गत आ जाती हैं। साधक का कर्त्तव्य है कि वह अपना सर्वस्व श्रीगुरुदेव के चरणों में न्यौछावर करके निष्काम भाव से एवं निरभिमान होकर उनकी प्रसन्नता के लिए साधना में तत्पर रहे। श्रीगुरु-गीता में कहा गया है—

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः,
पूजामूलं गुरोर्पदम्।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं,
मोक्षमूलं गुरोर्कृपा॥

गुरु-मूर्ति का ध्यान ही मुख्य ध्यान है।

गुरु-चरणों की पूजा ही सबसे बड़ी पूजा है। गुरु का प्रत्येक वाक्य ही मन्त्र रूप होता है तथा गुरु-कृपा ही मोक्ष की दाता है।

गुरुदेव स्वयं में ही एक रहस्य है। अतः उनकी प्रत्येक लीला एवं वचनों में गूढ़ रहस्य छिपा रहता है। साधक को उनके मुखारविन्द से निकले प्रत्येक शब्द पर मनन करना चाहिए और उनकी प्रत्येक आज्ञाका सोत्साह पालन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसके मन में प्रतिक्षण यह भाव बना रहना चाहिए कि मेरे स्वामी ब्रह्माण्ड भरके स्वामी हैं, मेरे गुरुदेव तीनों लोकों के गुरु हैं एवं मेरी आत्मा समस्त प्राणियों की आत्मा है। जैसे—

मन्नाथस्त्रिजगन्नाथः,
मद्गुरुस्त्रिजगद्गुरुः।
ममात्मा सर्वभूतात्मा,
तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

सद्गुरु की रहस्यमयी सत्ता से परिचित न होने के कारण अधिकांश लोगों को इस विषय में तरह-तरह की भ्रान्तियां रहा करती हैं। वे गुरु को अपने समान एक मनुष्य शरीर समझते हैं। उन लोगों को योग-योगेश्वर श्रीकृष्णके इन वचनों पर ध्यान देना चाहिए-

अवजानन्ति मां मूढाः,
मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो,
मम भूत महेश्वरम् ॥
(गीता)

मेरी सर्व व्यापकता एवं सर्वशक्तिमत्ता रूप परम भाव को न जानने वाले अज्ञानी लोग सम्पूर्ण प्राणियों के महान् ईश्वर तथा योगमाया से संसार में मनुष्य रूप से विचरते हुए मुझ परमेश्वर को एक साधारण मनुष्य समझते हैं।

गुरु का वास्तविक स्वरूप क्या है? इसका वर्णन श्री गुरु-गीता में देखिये—

अखण्ड मण्डलाकारं,
व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन,
तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

जिसने अखण्ड मण्डलाकार रूप से चराचर जगत् को व्याप्त कर रखा है, उस परम पद को जिसने दिखला दिया है, उन श्री गुरुदेव को नमस्कार है।

गुकारं च गुणातीतं,
रुकारं रूपवर्जितम्।
गुणातीतं आरूपं च यो,
हि स्यात्स गुरुः स्मृतः ॥

सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों से अतीत होना 'गुकार' का अर्थ है और रूप से रहित होना 'रुकार' अर्थ है। इस प्रकार त्रिगुणातीत एवं रूप रहित ईश्वर की जो परम सत्ता है, वही सद्गुरु कहलाता है।

उपरोक्त श्लोकों में यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि षट्चक्रों की साधनामें गुरुदेव का स्थान छठा चक्र (आज्ञा-चक्र) क्यों माना गया है? चूँकि विशुद्ध-चक्र तक पंच महाभूतों की स्थिति है। अतः वहाँ तक सत्व, रज तम इन तीनों गुणोंका प्रभाव रहता है, किन्तु गुणातीत होने के कारण गुरु-सत्ता पंच महाभूतों एवं गुणों के प्रभाव क्षेत्र से परे है।

गुरु-मन्त्र गुरु का ही स्वरूप होता है।

गुरु-मन्त्र और गुरुदेव में कोई भेद नहीं है। मन्त्र के माध्यम से शिष्य का गुरु के साथ सदैव सम्पर्क बना रहता है। जो साधक जितना अधिक मन्त्र जाप करेगा, उसके अन्दर उतना ही अधिक सद्‌गुरु का प्रकाश होता जायगा।

सद्‌गुरु दया के सागर होते हैं, उनके लिए कोई पराया नहीं होता। कोई उन्हें भजे या न भजे, साधक यदि सुपात्र हो, तो उनकी कृपा होते देर नहीं लगती। फिर भी जो साधक उन्हें अनन्य भाव से भजता है, उसे वे अपना ही स्वरूप समझते हैं। जगद्‌गुरु योगेश्वर श्रीकृष्ण ने गुरुदेव के इस उदार स्वभाव का निम्नलिखित श्लोक में संकेत किया है—

समोऽहं सर्वभूतेषु,
न द्वेषोऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां नित्यं,
मयि ते तेषु चाप्यहम्॥
(गीता)

मैं समस्त प्राणियों में समान भाव रखता हूँ। मैं न किसीसे द्वेष करता हूँ और न किसी से विशेष प्रेम ही करता हूँ। किन्तु जो पुण्यात्मा नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करते रहते हैं वे अन्दर वास करते हैं और मैं उनके अन्दर निवास करता हूँ। अर्थात् वे मेरी आत्मा ही हैं।

आनन्दकन्द श्री सद्‌गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहनजी महाराज अपने हमसब बालकों को प्रायः कहा करते थे कि तुम सब मेरी आत्मा के टुकड़े हो, तुम मेरे तेजांश हो। खूब भजन किया करो और अपने को उस परम तेज से परिपूरित करलो।

आज उनका स्थूल देह हमारे सामने नहीं रहा है। इससे हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि वे कहीं चले गये हैं।

वे कहीं भी नहीं गये हैं। पहले की भाँति अब भी हमारे बीच में ही हैं, वे पहले की भाँति अपने बालकों का मार्ग-दर्शन कर रहे हैं और उन पर कृपायें कर रहे हैं। वे सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, सत्, चित् और आनन्द इन तीनों का किसी भी कालमें अभाव नहीं होता यह एक निश्चित सिद्धांत की बात है। उनका पार्थिव शरीर से अलग हो जाना लीलामात्र है, जोकि प्रकृति के नियमों का पालन करने के लिए आवश्यक था, क्योंकि सिद्धपुरुष सर्व समर्थ होते हुए भी प्रकृति के नियमों का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

यह भी निश्चित है कि गुरुदेव का वरद-हस्त सदैव हमारे सिर पर बना रहेगा। आवश्यकता इस बात की है कि हम उनके पावन चरणाविंदों का चिंतन करते हुए तथा उनकी आज्ञाओं का पालन करते हुए योग-मार्ग पर चलते रहें। वे हर पल सहायक होंगे, गत मई मास में नाहन के योग-प्रचार कार्यक्रममें एक विशाल जनसमूह को संबोधित करते हुए उन्होंने बड़ी ओजस्वी वाणीमें कहा कि हमारे दीक्षित बच्चों की बात ही क्या है, जो दीक्षित नहीं हैं वे लोगभी यदि प्रभुचरणों में श्रद्धा रखते हुए अपने-अपने गुरु-मंत्रों का जाप एवं ध्यानाभ्यास आरंभ करदें तो उन पर भी प्रभुजी की कृपा होती रहेगी।

अतः "गुरुलोपो न कर्त्तव्यः" इस सिद्धांत के अनुसार हमें गुरुदेव को कभी न भूलना चाहिए और न उन्हें अपने से दूर समझना चाहिए, प्रत्युत उन्हें अपने हृदय में विराजमान करके उनके आदेशानुसार पवित्र योग-मार्ग पर चलते रहना चाहिए।

—✶—

● श्री गिरीशदेव वर्मा

योग के विघ्न एवं उनके उपाय

प्रस्तुत लेख में हम चित्त को विक्षेप करने वाले चार अन्य विघ्नों का वर्णन करेंगे।

दुःख दौर्मनस्यांगमेजयत्व श्वासप्रश्वास विक्षेप सहभुवः।

—यो० सू० १/३१

अर्थ—दुःख, क्षोभ, अंगों का हिलना, श्वास प्रश्वास की गड़बड़ी भी चित्त को विक्षेप करने वाले विघ्नों के साथी हैं।

भावार्थ—चित्तको विक्षेप करने वाले नौ विघ्न पिछले लेखोंमें बता चुके हैं, उनके चार साथी हैं। अब उनको भी बताते है, क्योंकि इनको भी हटाये बिना चित्त की एकाग्रता नहीं होती।

(१) दुःख—दुःख तीन प्रकार का होता है—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। १—अध्यामिक दुःख वह है जोकि मन के रोगी होने से होता है। जैसे किसी बीमारी में पीड़ा से व्यथित होना, दूसरे की बीमारी से स्वयं परेशान होना, किसी सम्बन्धी के मरण से चिन्तित होना तथा इसी प्रकार के दुःख जो पूर्व कृत कर्मों के अनुसार आ गिरते हैं।

२—आधिदैविक दुःख वह है जो अग्नि, वायु, जल आदि देवताओं द्वारा मिलते हैं। जैसे बिजली का गिरना, लू लगना, सर्दी से अकड़ जाना, भूकम्प, आँधी, पानी, आग आदि से पीड़ित होना। आप कहीं जा रहे हों उसी समय किसी मकान की दिवाल आपके ऊपर गिर पड़ना। आप घर में बैठे हों और अचानक बिजली का तार छू जाना। आप किसी सवारी से जा रहे हों और उसी समय किसी दुर्घटनावश चोट लग जाना आदि।

३—आधिभौतिक दुःख वे हैं, जो प्राणी मात्र द्वारा मिलते हैं जैसे साँप का काटना, बिच्छू, मच्छर, बर्रे आदि द्वारा पीड़ित होना, चोरों द्वारा सामान उठ जाना, आपस में लड़ाई होकर सिर फूट जाना इत्यादि।

(२) दौर्मनस्य—किसी इच्छा की पूर्ति न होने पर मन में जो क्षोभ उत्पन्न होता है उसे दौर्मनस्य कहते हैं। जैसे हमने चाहा कि अमुक काम हो जाय अथवा अमुक वस्तु हमको मिल जाय, किन्तु किसी कारणवश वह काम न हुआ अथवा वह वस्तु न मिली तो मन में बड़ा क्षोभ उत्पन्न होता है। ग्लानि होती है, क्रोध भी हो जाता है। ऐसी अवस्था में चित्त की एकाग्रता कहाँ स्थिर रह सकती है।

वास्तव में इच्छायें ही दुःख का कारण हुआ करती हैं। "Desire is the Cause of pain." इच्छाओं का कोई अन्त नहीं होता है। भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है कि—

भोगा न भुक्ता, वयमेव भुक्ता,
तपो न तप्तं, वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो, वयमेव याता,
तृष्णा न जीर्णा, वयमेव जीर्णा॥

अर्थ—विषयों को हमने नहीं भोगा, किन्तु विषयों ने ही हमारा भुगतान कर दिया। हमने तप को नहीं तपा, किन्तु तप ने हमें ही तपा डाला। काल का खात्मा न हुआ, किन्तु

हमारा ही खात्मा हो चला। तृष्णा का बुढ़ापा न आया, पर हमारा बुढ़ापा आ गया।

श्री शङ्कराचार्य ने भी कहा है कि—

अग्ने बह्निः पृष्ठे भानु रात्रौ,
चिबुक समर्पित जानुः।
करतल भिक्षा तरुतल वास-
स्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः॥

अर्थ— दिन में आगे अग्नि और पीछे सूर्य से शरीर तपाते हैं, रात्रि के समय जानुओं में ठोड़ी दबाये पड़े रहते हैं। हाथ में ही भिक्षा मांग लेते हैं, वृक्षके तले ही पड़े रहते हैं, फिर भी आशा का जाल जकड़े ही रहता है।

इसीलिए बताया गया है कि योगी को इच्छा-द्वेष, लाभ-हानि, जय-पराजय आदि द्वन्द्वों में समत्व प्राप्त कर लेना चाहिए। दौर्मनस्य रूपी विक्षेप साधना में अग्रसर नहीं होने देता है।

(२) अङ्गमेजयत्व—शरीर के अङ्गों का हिलना। आसन की स्थिरता जब नहीं रहती है तब अंग कांपा करते हैं। स्नायु-मण्डल में रक्त का संचालन ठीक तरह नहीं होता और थोड़ा भी अभ्यास बढ़ाने पर अंगों के हिलने का विक्षेप हो जाता है। आसनकी दृढ़ता इस तरह होनी चाहिए जैसे जमीन में खूंटा गाड़ दिया गया हो। उस समय शरीर के स्नायु-विधानका काम बन्द हो जाना चाहिए। यदि शरीर हिला करेगा, अंग कांपा करेगा तो स्नायु-मण्डलका काम जारी रहेगा और चित्त एकाग्रता को नहीं प्राप्त होगा।

बहुत से मनुष्य जब आसन लगाते हैं तब कभी इधर मुड़कर देखते हैं, कभी उधर, कभी किसी अंग को खुजाते हैं, कभी पांवों में दर्द हो जानेसे टांगें फैला देते हैं या उठ बैठते हैं। कभी-कभी पांवों में झनझनी चढ़ जाती है। यह सब अंगमेजयत्व के दोष हैं, इसको दूर करना चाहिए। गीता कहती है—

समं काय शिरो ग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥

अर्थ— धड़, गर्दन, सिर एक सीधमें अचल रखकर व स्थिर रहकर, इधर-उधर न देखता हुआ अपने नासिकाग्र पर निगाह डटाकर, पूर्ण शांति से निर्भय हो ब्रह्मचर्य में दृढ़ होकर मन को मारकर मुझमें परायण हुआ योगी मेरा ध्यान करता हुआ बैठे।

इस तरह से आसन लगाने से अंगमेजयत्व का दोष मिट जाता है। यदि इस पर भी विघ्न दूर न होवे तो गुरु के आदेशानुसार आगे बताये किसी साधन का अभ्यास कर डालना चाहिए।

(४) श्वास-प्रश्वास विक्षेप—श्वास कहते हैं अन्दर लेने वाले सांसको और प्रश्वास कहते हैं बाहर निकालने वाले सांस को। इसमें भी गड़बड़ी होनेसे चित्तकी एकाग्रता नहीं होती। सांस का पूरा न भरना, रेचक का लम्बा न होना अथवा थोड़ा ही प्राणायाम करने पर हांपने लगना, मुंह से सांस लेने लगना आदि श्वास-प्रश्वास के विक्षेप हैं।

नियमतः पूरक से रेचक लम्बा होना चाहिए अर्थात् जितनी देर में सांस खींचा जाय उसके दुगने समय में निकाला जाय। बहुत लोगों का रेचक लम्बा नहीं हो पाता और सांस जल्दी निकल जाती है। हमारे कालेज में एक लड़के ने जीवन तत्त्व साधन सीखना आरंभ किया। जब वह पहली क्रिया सर्वोत्तान करता है तो सांस भरने व शरीर तानने के बाद जब सांस धीरे-धीरे निकालने

(● शेष पृष्ठ १७ पर)

श्रद्धांजलि

रचयिता—श्री शिवनारायण "शिव"

दि नकर थे तुम सिद्धपीठ के, ज्योतित सारा विश्व किया।
वं दनीय अभिनन्दनीय थे, जन-जन को शुचि स्नेह दिया॥
ग रिमामय जीवन जीकर तुम, अनायास ही चले गये।
त दाकार हो गये ब्रह्म से, हम सब यूँ हीं छले गये॥
श्री गुरुवर की वह वर वाणी, महाशून्य में समा गई।
श्री उपदेशामृत मंजूषा, हमें हाथ में थमा गई॥
चं न्द्र योग योगेश्वर थे तुम, सत्य-प्रेम के पर्यायी।
द्र इन्द्र सम शोभाशाली, पूर्ण पुरुष थे तुम न्यायी॥
मो ह पाश से मुक्त मनस्वी, किया सभी को परम सुखी।
ह रे सभी के क्लेश किसी को, देख न पाये कभी दुःखी॥
न र तुम तो नारायण ही थे, अनगिन सुमनों के माली।
जी वट सिद्ध सुधी उपकारी, महासन्त प्रतिभाशाली॥
म हिमा मण्डित तव चरणों में, श्रद्धा सुमन समर्पित हैं।
हा राम! हृदय उद्गारों का, हार तुम्हें ही अर्पित है॥
रा मलालजी महा प्रभु के, परम शिष्य पर उपकारी।
ज ग से नाता तोड़ गये तुम, दिव्य रूप, हम आभारी॥

(● पृष्ठ १६ का शेष)

को कहा जाता तो उसकी सांस एकबारगी झक से निकल जाती। बहुत प्रयत्न करने पर भी उसका रेचक लम्बा न हो सका। अतः उसे "प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य" सूत्रके अनुसार प्राणायाम का अभ्यास कराया गया। थोड़े दिन ऐसा करने पर उसका रेचक लम्बा होने लगा और वह सर्वोत्तानकी क्रिया ठीक प्रकार करने लगा। उसका श्वास-प्रश्वास का विक्षेप दूर हो गया।

उपरोक्त चारों उप विघ्न हैं। आगे के आठ सूत्रों में नौ विघ्नों व चार उप-विघ्नों को दूर करने के आठ उपाय बताये गये हैं। सद्गुरु के आदेश के अनुसार जिसको जो उपाय ठीक हों उसे उसका अभ्यास करना चाहिए और विघ्नों को दूर करना चाहिए। विघ्नों के दूर हो जाने पर साधना तीव्रता से बढ़ जाती है। अब हम अभी उन आठों प्रतिषेधात्मक उपायों का वर्णन करेंगे। *

● श्री दर्शनानन्द

योग-साधना के अधिकारी

योग-साधना के अधिकारी कौन हैं? इसका उत्तर योगाचार्यों ने देते हुए कहा कि योग-साधनों के करने में जाति, अवस्था, देश और लिंग-भेद आदि की कभी कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। चाहे कोई किसी देश का निवासी हो, स्त्री अथवा पुरुष हो, बाल, युवा या वृद्ध हो, वर्ण और आश्रम की दृष्टि से यती, मुनि, गृहस्थ या संन्यासी अथवा ब्रह्मचारी कोई भी क्यों न हो। यौगिक पथ को अपनाने के लिए स्वतंत्र रहता है। योगाचार्यों का कहना केवल यह रहता है कि साधक को यौगिक क्रियायें किसी योग्य गुरु के निर्देशनमें ही सीखनी और करनी चाहिए। साथ ही नियमित आहार और संतुलित जीवनचर्या बनाने के अपने व्रत पर दृढ़ता से दीर्घकाल तक अपने अभ्यास क्रम को जारी रखना चाहिए। इतना होने पर ही योग-साधना के सुपरिणाम सामने आ पाते हैं। योग के यम-नियमों का पालन करना भी योग-सिद्धि की अनिवार्य शर्त रहती है।

आइये! सुनिये इस सम्बन्ध में हठयोग के प्रख्यात विश्लेषक योगी आत्माराम के अपने विचार :

× × ×

युवा वृद्धोऽतिवृद्धो वा,
व्याधितो दुर्बलऽपि वा।
अभ्यासात्सिद्धिमाप्नोति,
सर्वयोगेष्वतन्द्रितः॥

जवान हो या वृद्ध हो अथवा अतिवृद्ध हो, रोगी हो या अति दुर्बल हो, कैसा भी हो सारे योगों में सावधान होकर अभ्यास करने से सिद्धि को पा सकता है। यहाँ अभ्यास-पदसे आसन प्राणायामादिक समझने चाहिए, जैसे जीविका साधन में कृषि-वाणिज्य आदि कर्मों में जीवन-पद का प्रयोग होता है ऐसे ही यहाँ योग पद का प्रयोग भी समझना चाहिए।

अभ्यास से ही सिद्धि मिलती है, इस बात को यह दो श्लोक दृढ़ करते हैं।

क्रियायुक्तस्य सिद्धिः
स्यादक्रियस्य कथं भवेत्।
न शास्त्रपाठमात्रेण,
योगसिद्धिः प्रजायते॥

जो योग की क्रिया करता है उसी को सिद्धि मिलती है और जो क्रियाशून्य है, उसको सिद्धि नहीं मिलती, केवल शास्त्रों के पठन मात्र से योग सिद्धि नहीं हो सकती।

न वेषधारणं सिद्धेः,
कारणं न च तत्कथा।
क्रियैव कारणं सिद्धेः,
सत्यमेतन्न संशयः॥

और केवल कषाय वस्त्र पहनकर वेश बनाने मात्र से सिद्धि नहीं मिल सकती और न केवल कथा कहना ही सिद्धि का कारण हो

सकता है। अपितु क्रिया ही यानी योग का साधन करना ही सिद्धि का कारण होगा। ये सत्य है इसमें संशय नहीं है।

गोधूमशालियवषाष्टिकशोभनान्नं
क्षीराज्यखण्डनवनीतसितामधूनि।
शुण्ठीपठोलकफलादिकपञ्चशाकं
मुद्गादि दिव्यमुदकं च यमीन्द्रपथ्यम्।

गेहूँ, चावल, जौ, साठी चावल, शोभनान्न यानी समा, दूध, घी, खांड़, माखन, मिश्री, शहद, सोंठ, परवल आदि पाँच साग मूँग, आढकी, दिव्य जल ये सब पदार्थ योगियों के भोजन योग्य हैं। परवल, बथुआ, मूली, पुनर्नवा और मेघनाद ये पांच साग आंखों को हितकारी हैं और सब साग आंखों को हानि पहुँचाते हैं।

अब योगी के भोजन का नियम बताते हैं।

पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं गव्यं धातुप्रपोषणम्।
मनोभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरत्॥

देह को पुष्ट करने वाले भात आदिक पदार्थ शर्करा सहित तथा घृत मिले पदार्थ जैसे मोहन भोग, गौ का दूध, घी, यदि गौ का मिले तो भैंसका दूध भी ग्रहण कर लेवैं। धातु को पुष्ट करने वाले जैसे लड्डू, मालपुआ आदि पदार्थ। इन पदार्थों में से जो योगीको रुचिकर हो वह ग्रहण करना चाहिए यानी अच्छे पदार्थ खाकर योग का साधन करे। सतुआ, चना-चबैना खाकर योग सिद्ध नहीं हो सकता।

भोजनमहितं विद्यात्पुनरस्योष्णीकृतं रूक्षम्।
अतिलवणमम्लयुक्तं कदशनशाकोत्कटंवर्ज्यम्।

द्वितीय बार अग्नि पर पकाया भोजन और रूखा यानी घृत जिसमें न हो ऐसा भोजन, अधिक लवण वाला भोजन, खटाई वाला भोजन और यावनाल कोदो आदि से बना भोजन और जिनका शास्त्र में निषेध है ऐसे शाक और जिनके पेटमें पीड़ा हो, जलन हो, ऐसे भोजन हठयोगी को वर्जय कहे गये हैं। महायोगी दत्तात्रेयजी ने भी ये हठयोग में विघ्न करने वाले बतलाये हैं तथा स्कन्द-पुराण में भी खट्टे-कड़ुए, मिरच के नोंन के पदार्थों का निषेध किया है और कहा है कि योगी को दूध पीना चाहिए। कोई-कोई इस श्लोक के तीसरे पाद में पाठ-भेद मानकर मांस खर आदि पदार्थों का निषेध करते हैं। कोई-कोई अन्तिम पद को (दुष्ट भू) पढ़ते हैं उसका अर्थ यह है कि अन्न बासा हो या दुर्गन्धि वाला हो उसे भी छोणना चाहिए।

वह्निस्त्रीपथिसेवानामादौ वर्जनमाचरेत्।

प्रमाण रूप गोरक्ष का वचन कहते हैं।

वर्जयेद्दुर्जनप्रान्तं वह्निस्त्रीपथिसेवनम्।
प्रातः स्नानोपवासादि कायक्लेशविधि तथा॥

ये वस्तुयें हमेशा त्यागनी चाहिए। अब योगाभ्यास के समय छोड़ने लायक वस्तुयें बतलाते हैं। अभ्यास के समय योगी अग्नि का सेवन न करे तथा स्त्री का संग न करे और रास्ता न चले अर्थात् उस समय तीर्थ-यात्रा भी न करे। दुर्जनों के पास न बैठे। अग्नि, स्त्री, मार्ग का परित्याग करे ऐसे गोरक्षजी भी कहते हैं और प्रातःकाल स्नान उपवास शरीर को क्लेश पहुंचाने वाले कार्य भी त्याग देवे। प्रातः स्नाव से शीतके विकार यानी ज्वरादिक हो सकते हैं अतः निषेध किया है। श्लोक में आदौ पद रखा है जिससे यह सूचित होता है कि सिद्ध हो जाने के अनन्तर योगी शीतकाल में अग्नि का सेवन कर सकता है तथा यदि गृहस्थ हो तो ऋतुकाल में अपनी भार्या का संग कर सकता है तथा तीर्थं यात्रादिक कर सकता है।

● श्री लालचन्द

भगवान् का काव्य

अन्ति सन्तं न जहाति,
अन्ति सन्तं न पश्यति।
दिव्य पश्य काव्यं,
न ममार न जीर्यति॥
अथर्व० १०/८/३२

मनुष्य सदा समीप ही विद्यमान परमात्मदेव को कभी त्याग नहीं सकता। मनुष्य भगवान् से जुदा नहीं हो सकता, वह भगवान् तो अन्तर्यामी हृदयविहारी है ही, सदा साथ रहने वाला है। मनुष्य अपने साथ ही रहने वाले परमात्मा को देखता तक नहीं, वह उसके अपने साथ रहने के भाव को भुलाए है और अपनी मनमानी कर रहा है, भगवान् का अस्तित्व तक भूला चुका है। हे मनुष्य, तू उस परमदेव के काव्य को देख, जो काव्य कभी मरा नहीं, मरता नहीं, मरेगा भी नहीं, और कभी जीर्ण भी नहीं होता, कभी पुराना तक नहीं होता। ऐसा है अद्भुत वह परमात्मा का काव्य। हे मनुष्य, तू उसे देख।

परमात्म देव का काव्य अमर वेद है। नित्य रहने वाला वेदज्ञान है, सत्य ज्ञान है। वेदज्ञान पूरा सत्य है, वह अमर है, पूर्ण है। उसमें मानव के विकास के सारे साधन बहुत ही स्पष्ट कहे हैं। वेद ज्ञान सदा नया है, नित्य नया है, वह कभी भी जीर्ण नहीं होता, वह कभी पुराना नहीं होता, वह कभी अनुपयोगी नहीं होता। वह नित्य है। उसकी उपयोगिता प्रसिद्ध है। मनुष्य का परम हित इसी में है कि वह सत्यज्ञान में रुचि बढ़ाए, पूरी लग्न से वेद ज्ञान, सत्यज्ञान का संचय करे और दिव्यजन बने। भगवान् के गुण धारण करना अपना मुख्य धर्म समझे, और दिव्य गुण धारण कर के भगवान् का सामीप्य अनुभव करे, और भगवान् का निकटवर्ती बने, भगवान् का उपासक बने। जितना समय मनुष्य इधर-उधर की वृथा चर्चा में खो रहा है उसका कुछ अंश तो वह सत्य का साक्षात्कार करने में अवश्य लगाए। भगवान् का काव्य अमर वेद पढ़े अथवा सुने और वेद के अनुसार अपना जीवन व्यवहार करे। तभी वह आर्य बनेगा और आर्यजनों का संगठन ही आर्यसमाज भगवान् के उपासकों का, दिव्यजनों का, श्रेष्ठजनों का समाज बनेगा तो अवश्य शक्तिशाली प्रभावशाली होगा। आर्यजनों का संगठन तो सर्वहित के लिए यज्ञमय जीवन के प्रसार के लिये होगा। वे दिव्यजन ही देवयज्ञ करने के अधिकारी हैं जिनमें ईर्ष्या नहीं, घृणा नहीं, द्वेष नहीं, जो सर्वहित में अपना हित निहित समझते हुए सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझते हैं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। केवल स्वयं की उन्नति में ही लगे रहना भी स्वार्थ ही है और निजी स्वार्थ ही फूट वैमनस्य फैलाने का कारण होता है, जिससे परिवार तथा समाज का ह्रास होता है। मनुष्य भगवान् के अमर काव्य वेद को देखे, श्रद्धा से देखे,

निश्चय से देखे; तो उसे वेद में सर्वहित की सर्वमंगल की शिक्षा ही मिलेगी जिससे व्यक्ति तथा समष्टि दोनों का परम कल्याण होगा। निश्चित ही वेदज्ञान के अनुसार जीवनचर्या बनाने से परिवार में सुख, शान्ति, वैभव, दिव्य ऐश्वर्य सभी साधन उपलब्ध होते हैं। मनुष्य पूर्ण स्वस्थ रहता है और अपनी उन्नति में ही सन्तुष्ट न रहकर सबका मंगल सोचता है और यथाशक्ति सर्वमंगल करता भी है। भगवान उसकी कार्यक्षमता बनाये रखते हैं। वह लोकमान्य, लोकप्रिय हो जाता है, उसकी सुगति होती है। उसे सुयश मिलता है और वह भगवान का प्यारा दीर्घायु पाता है।

हे मनुष्य ! तू अपने कल्याण तथा समाज के कल्याणके लिए वेदज्ञान प्राप्त कर। दिव्य-जनों से, आप्तजनों से, आदित्यजनों से, आर्य सज्जनों से मिल। ये तेरे साथ जीवन पथ पर चलेंगे और तेरा जीवन पथ अलोकित करते रहेंगे।

हे मनुष्य ! भगवान का अमर काव्य वेद है, तू वेदज्ञान प्राप्त कर। भगवान की लीला भगवान का अभिनय यह असीम विस्तृत जगत है, यह अनन्त जगती है। इसी में भगवान की सुव्यवस्था और सुनियम काम करता हुआ देख। हे मनुष्य ! तू देख भगवान की कार्यकुशलता। उस अनन्त अमर सत्ता का प्रभुत्व देख, उसकी महानता देख, साथ ही उसकी सूक्ष्मता देख। वह सबके हृदय में है और साथ ही सारी जगती में भी है। हे मनुष्य ! तू भगवान की दयालुता देख और उसे समझ, स्वयं भी दयावान हो, क्रूर मत रह, आपस के सन्देह हटा, आपस में विश्वास करना सीख। देख, भगवान सबमें है। किसी से तू घृणा कैसे कर सकता है ? क्या तू हृदय में आसीन भगवान से घृणा करेगा ? तुझमें यह दुःसाहस क्यों है कि तू अकिंचन से घृणा करता है ? क्या तू उसमें भगवान को नहीं देखता ? तू अपने भाई की उन्नतिमें सहयोग क्यों नहीं करता ? तू क्यों ईर्ष्या करता है और द्वेष फैलाता है ? इस पावन और सु-व्यवस्थित जगत में तू क्यों बाधायें खड़ी करता है ? तू स्वयं उन्नत हो और दूसरों को उन्नत कर। देख, संभल, भगवान तेरे सब इरादे जानता है। तू वरुणदेव के पाशों में जकड़ा जायेगा बचेगा नहीं। तू चेत और अनर्थ मत कर। सबसे सत्य प्रेमयुक्त व्यवहार कर और सबका बन, अपना स्वार्थ त्याग।

इस वेद मन्त्र में वर्णित असमंजस की अवस्था क्या है और यह कैसे ठीक हो ? ये दोनों प्रश्न उत्तर चाहते हैं। मनुष्य में जो यह उपेक्षा की वृत्ति है कि वह अन्दर स्थित भगवान को नहीं जानता। इसका कारण है उसकी चेतना की कमी, उसके अन्तःकरण में अन्धकार, उसमें अविद्या और किंकर्तव्य-विमूढ़ता। प्रायः लोग रजोगुण तथा तमोगुण में रमण करते हैं, बिरला ही कोई व्यक्ति सत्वगुण में स्थित मिलेगा। लोगों के खान-पान, व्यवहार में रजोगुण तथा तमोगुण की ही बहुतायत है। कई व्यक्ति ऐसे देखे हैं जिन्हें सत्वगुण वाला आहार भाता ही नहीं, वे तेज नमक, मिर्च, अण्डे और मांस आदि में ही रुचि रखते हैं। वे कभी संध्योपासना के लिए समाहित चित्त से बैठते ही नहीं। अपने कारबार में ही इतने व्यस्त रहते हैं कि वे अपने अन्दर जीवन स्रोत भगवान को जानते नहीं, जानना चाहते भी नहीं। वे कभी शांत चित्तसे भगवान का स्मरण तक नहीं करते। इनकी पूजा में भी दम्भ और आडम्बर ही देखा गया है। रजोगुण के व्यवहार में समा-हित चित्त, शांत चित्त रहना संभव ही नहीं।

रजोगुणी व्यक्तिमें आलस्य और प्रमाद रहता ही है। इन दोनों गुणों का प्रभाव है विकृत काम और क्रोध। ये क्रूर और हठी दुराग्रही होते हैं। सत्वगुण का परिणाम है तेजस्विता, वर्चस्विता, ओजस्विता, स्थिरता, दृढ़ता और अन्तःप्रकाश। सत्वस्थ रहे, बिना आत्मा-परमात्मा में रुचि ही नहीं होती। रजोगुणी तमोगुणी लोगों में असमंजस, निश्चयहीनता, अश्रद्धा और उतावलापन देखा गया है। इनमें मानसिक सन्तुलन नहीं होता। ये आत्मोन्नति में रुचि नहीं रखते, खाने, पीने, पहनने में ही इनकी रुचि रहती है। सत्संग से ही ये व्याधियाँ दूर हो सकेंगी और मनुष्य में आत्म-विश्वास, श्रद्धा और निश्चय होंगे। ऐसे रजोगुणी तथा तमोगुणी लोग धनवान तो देखे हैं, पर उनका धन ऐश्वर्य नहीं कहा जा सकता। ऐसे लोगों में स्वार्थ, संकीर्णता, ओछापन, कमीनापन, हीनता और दीनता होती है। सत्वस्थ मनुष्य ही उदार, दानशील, सर्व हितकारी, दृढ़ मित्र, सच्चे सुहृद होते हैं। सात्विक लोगों का आहार युक्त होता है, विहार पवित्र होता है और उनकी कर्म चेष्टा में लग्न तथा तत्परता स्पष्ट दीखती है, ये मधुरभाषी सत्य का हनन नहीं करते, उनका धन सबके हित में व्यय होता है और वह ऐश्वर्य हो जाता है। ऐश्वर्यवान व्यक्ति सदा नैतिक जीवनचर्या करते रहते हैं। सत्वगुण स्थित व्यक्ति में अभिमान नहीं होता, वह कर्मठ रहता है और दिनोंदिन अपने जीवन लक्ष्य के निकट होता जाता है।

रजोगुणी लोगोंमें समता के शुद्ध प्रेमयुक्त भावों का अभाव देखा गया है। कोई मनुष्य स्वभाव में कैसा है? यह इस प्रकार जाना जाता है कि उसके विचार कैसे हैं तथा उसे कैसे भोजन में रुचि है? तमोगुणी व्यक्ति में प्रायः आलस्य और प्रमाद बहुत होते हैं, वह पुरुषार्थ को नहीं करेगा। ये लोग दूसरों की उन्नति में ईर्ष्यालु होते हैं। वृथा द्वेष बढ़ाते हैं और इन करतूतों में इतने व्यस्त रहते हैं कि अपने अन्दर स्थित भगवान की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता। ये लोग अन्य-जनों को सौभाग्यवान और अपने को दुर्भाग्य के वशीभूत समझा करते हैं। ये विश्वासघात करते लजाते नहीं। अमृत को ही ये सफलता की भित्ति मानते हैं। भगवान की दया और दयायुक्त लाभ में इन्हें श्रद्धा नहीं होती। ये श्रद्धाहीन लोग अपनी उन्नति के लिए यत्न नहीं किया करते और अन्यजनों की उन्नति इन्हें नहीं भाती। सत्वस्थ हुए बिना मनुष्य आत्मवान नहीं होता और आत्मवान होने पर ही मनुष्य में भगवान में श्रद्धा और विश्वास होता है।

दूसरे का दोष देखना सरल है, अपना दोष देखना कठिन है। दूसरे के दोष मनुष्य भूसे के समान (हवा में) उड़ाता है। परन्तु जिस तरह जुआरी हार के पांसे को छिपाता है, उसी तरह मनुष्य अपने दोषों को छिपाता है।

× × × ×

पहले अपने को ही आदर्श में ढाले। अनन्तर ही दूसरे को उपदेश दे। इसी तरह बुद्धिमान पुरुष क्लेश से बचता है।

● श्री जगदीश

आहार शुद्धि, स्मृति और अभ्यास

आहार की शुद्धि

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता, उसके स्वभाव में समत्व का आना अथवा उसकी स्मृति में स्थित होना बहुत मुश्किल है। योगाभ्यास का अर्थ ही परम पवित्र परमात्मा पर मनको एकाग्र करना और ईश्वरीय गुणों अथवा सम्बन्ध का मनन करना है। इससे स्पष्ट है कि जो मनुष्य अपवित्रता की बात सोचता है अथवा आसुरी कर्म का मनन करता है, वह तो योगी के लक्ष्य से विपरीत ही लक्ष्य अपनाकर भोगी ही बनने का पुरुषार्थ करता है।

यह निश्चित बात है कि ब्रह्मचर्य-व्रत के बिना मनुष्य के मन में न स्मृति स्थिर हो सकती है और न सहनशीलता तथा समत्व की भावना ही आ सकती है।

परमपिता परमात्मा की मिलावट-रहित शुद्ध और ध्रुव स्मृति में स्थिति प्राप्त करने के लिए मनुष्य को अपने आहार पर विशेष तौर पर ध्यान देना चाहिए, क्योंकि आहार का मनुष्य के विचार से बड़ा गहरा सम्बन्ध है। मनुष्य जैसा आहार लेता है, उसका वैसा ही सत्व बनता है और सतोगुणी अर्थात् पवित्र भोजन करने से उसकी बुद्धि पर भी वैसा ही प्रभाव पड़ता है अर्थात् उसके मन की एकाग्रता भी वैसी ही विषयों पर हो जाती है।

स्मृति

प्रायः लोग समझते हैं कि योग बहुत चीज है, परन्तु वास्तव में स्मृति ही सहज समाधि है। जब-जब मन अपनी देह के भी भान को भूलकर बिन्दु-सदृश्य ज्योति-स्वरूप परमपिता परमात्मा की स्मृति पर टिक जाता है तो मनुष्यात्मा का परमपिता से योग होता है। स्मृति से हमारा अभिप्राय किसी मन्त्र का स्मरण या किसी रूप का ध्यान करना नहीं है, बल्कि सर्वोत्तम गुणों वाले जो परमपिता परमात्मा शिव हैं, उन्हीं से युक्त होना है। जितना-जितना कोई मनुष्य नष्टोमोहः होता है, उतनी-उतनी ही उसकी स्मृति ध्रुव और अव्यभिचारी अर्थात् शुद्धहोती है। परमपिता परमात्मा की शुद्ध स्मृति में रहने से आत्मा शुद्ध एवं पावन होती है और मुक्तिधाम तथा जीवन्मुक्ति धाम में जाती है। परमात्मा की स्मृति में यदि अन्यान्य जीवों या पदार्थों की याद भी मिश्रित हो जाती है तो उसका बुद्धियोग शुद्ध अथवा अव्यभिचारी न होने से उसकी स्थिति और वृत्ति भी अशुद्ध होती है और गति भी तदानुसार ही होती है, क्योंकि स्मृति से ही स्थिति, वृत्ति और कृति का सम्बन्ध है। अतः स्मृति को ठीक तरह ईश्वर में लगाने से संसारकी स्थिति भी बदल जाती है।

आपने देखा होगा कि जब कोई मनुष्य किसी बीमारी के कारण अथवा किसी सदमें या अत्यन्त वृद्धावस्था के कारण स्मृति को खो बैठता है तो वह अनाप-शनाप बकने लगता है और लड़ने-झगड़ने तथा उल्टे-सुल्टे

कर्म करने लगता है। ठीक इसी प्रकार जब मनुष्य को आत्मा की तथा परमपिता परमात्मा की स्मृति नहीं रहती, तब उसका भी बोलना-चालना और रहना-करना दैवी-मर्यादा के अनुकूल नहीं रहता। अतः आप ही सोचिये कि वृत्ति को भी परिवर्तित करने के लिए स्मृति का कितना महत्व है! वास्तव में स्मृतिसे ही परमात्मा का सहारा मिल सकता है, स्मृति से ही सहनशीलता आती है, स्मृति ही से सत्य-स्वरूप परमात्मा का संग होता है। स्मृति मानो एक ऐसा इंजेक्शन है जिसके द्वारा मनुष्य को सर्वशक्तिमान परमात्मा से शक्ति भी मिलती है, जिससे कि मनुष्य के जन्म-जमान्तर के विकर्म रूपी कीटाणु अथवा कृमियाँ नाश हो जाती हैं।

योग के लिए मनुष्य को मुख्य रूप से पाँच बातों की स्मृति रखनी चाहिए—

(क) मैं कौन हूँ और इस सृष्टि-रूपी सराय में कहाँ से आया हूँ और मुझे कहाँ, कब और कैसे वापस जाना है?

(ख) अन्य जो शरीरधारी अथवा मनुष्य-तनधारी हैं, उनके साथ मेरा वास्तविक संबंध क्या है तथा परमात्मा के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है और परमपिता परमात्मा से मुझे क्या प्राप्ति होगी?

(ग) मेरी प्रारम्भिक स्थिति कैसी थी और वह कैसे और कब बदली और उसमें गिरावट क्यों आई तथा अब मैं उस स्थिति को कैसे प्राप्त कर रहा हूँ और उसमें परमपिता परमात्मा ने मुझे कैसे लगाया है?

(घ) अब इस जन्म में मुझे क्या करना चाहिए, कैसे परमात्मा पर न्योछावर होना चाहिए और किसके मत पर चलना चाहिए ताकि मेरा यह जीवन योगी ही बना रहे।

(ङ) इस जीवन में योगी बनने से अभी और बाद में क्या लाभ हैं, कितनी जबरदस्त प्राप्ति है और परमात्मा का बनने में कितना आनन्द आता है? जब मनुष्य इन पाँचों प्रश्नों के उत्तरों की स्मृति में रहता है तो उसका मन योग-स्थित हो जाता है।

अभ्यास

जन्म-जन्मान्तर दैहिक सम्बन्धों के कारण मनुष्य का देहाभिमान पक्का हो गया है और मनुष्य को आत्मा तथा परमात्मा की विस्मृति होगई है। अतः अब ईश्वरीय स्मृतिके अभ्यास करने से स्मृति, शुद्ध और ध्रुव होगी। केवल यह निश्चय हो जाये कि मैं आत्मा हूँ, परमपिता परमात्मा की अविनाशी सन्तान हूँ, पर्याप्त नहीं है बल्कि उसकी स्मृतिका अभ्यास भी आवश्यक है ताकि यह निश्चय आचरणमें आ जाय। कार्य-व्यवहार में बर्तते हुए मनुष्य को फिर-फिर विस्मृति हो जाती है और वह देह-अभिमानी हो जाता है। अतः मनुष्य को चाहिए कि प्रतिदिन प्रातःकाल अमृत वेले तथा रात्रिको ईश्वरीय स्मृति में निष्ठ होनेका अभ्यास करे ही परन्तु दिन-भर में कई बार समय निकाल कर कुछ-कुछ मिनट ही सही, प्रेम और उल्लास से ईश्वरीय स्मृति में टिकने का अभ्यास करता रहे।

अभ्यास के प्रारंभिक दिनों में कभी सुस्ती, कभी थकावट, कभी हिचकिचाहट और कभी उदासीनता की लहर आये तो अपने अभ्यास को छोड़ना नहीं चाहिए, क्योंकि योग से गिर कर फिर चढ़ना अधिक कठिन होता है। अतः यह सदा याद रखना चाहिए कि योग तो बड़ा सरस और मधुर है और जबकि उससे अतुल प्राप्ति है, तब तो मन की विक्षेपता को हटाकर अभ्यास में लग जाना ही उचित और कल्याणकारी है।

नाभि-चालन

● श्री सद्गुरुदेवजी द्वारा

(गताङ्क से आगे)

यहाँ से वालुका-चक्र को शाखायें जाती हैं, जिसको Ganglion nodosum कहते हैं। यहाँ से Vagus nerve मेरु दण्ड के साथ-साथ गर्दन, छाती और पेट तक जाकर मणि-पूरक चक्र में समाप्त हो जाती हैं, किन्तु बीच में इसकी शाखायें Autonomic Nerves System स्वतन्त्र नाड़ी मण्डल के Prevertebral plexus को तथा गर्दन में विशुद्ध चक्र को व हृदय में अनाहद चक्रको भी जाती हैं। मणिपूरक चक्र के नीचे भी कुछ शाखायें Renal, heptic splenic और Pancreatic Plexus को गई हुई हैं और मूलाधार चक्र में समाप्त हो गई हैं।

प्राणायाम में जब प्राणवायु अन्दर ली जाती है तब मस्तिष्क के अन्दर स्नायु-केन्द्रों में एक प्रकार की लहर पैदा होती है जिसको afferent impulse कहते हैं और जब अपान वायु द्वारा श्वास बाहर फेंक दी जाती है तब उस लहर को Efferent impulse कहते हैं। प्राण और अपान वायु जहाँ मिलते हैं, वहाँ एक तीसरी लहर पैदा होती है जिसको व्यान वायु अर्थात् Reflex impulse कहते हैं। यह लहर मस्तिष्क से अथवा मेरुदण्ड से अथवा Sympathetic nerve centre अर्थात् चक्रों में उत्पन्न होती है। जब Reflex impulse मस्तिष्कमें पैदा होती है तो प्राण-शक्ति अपान वायु द्वारा शरीर के Skeletal muscles को मिलती है और शरीर में हरकत Conscious sensation सी होती है। किन्तु जब यह लहर मेरुदण्ड के किन्हीं चक्रों से उत्पन्न होती है, तब प्राण व अपान के accelerating effect) को उन अंगों में ठीक करती है जो उस चक्र से शासित होते हैं। परन्तु यह हरकत conscious sensation से नहीं होती है किन्तु जब अचेतन कार्य चेतन होना चाहता है तब एक दूसरी लहर उस अंग से मेरुदण्ड द्वारा ब्रह्मरन्ध्र चक्र को जाती है और मस्तिष्क के cortex में पहुँचती है। इस लहर को accelera tory impulse कहते हैं। यह लहर मस्तिष्क में जाकर हलचल पैदा करती है। यहाँ से एक दूसरी लहर उत्तेजित इन्द्रिय को आती है इसको Equi-poising impulse कहते हैं। यह लहर Vagus तथा parasympathetic स्नायु तन्तुओं से गुजरती है और फिर उसी से शासित होती है। उदाहरणार्थ यदि सोते समय हमको किसी कीड़े ने काट लिया और दर्द अधिक न हुआ तो अचेतना में ही हमारा हाथ वहाँ

पहुँचकर खुजला देगा, किन्तु यदि दर्द अधिक हुआ तो हम चेतन हो जायेंगे। मेरुदण्ड से लहर मस्तिष्क को पहुँच जायेगी और वहाँ से आँखों को आज्ञा होगी कि देखकर काटे हुए स्थानको खुजलाये या दवा लगाये आदि। मस्तिष्क यह कार्य Vagus nerve को सौंप देता है और बाद को सारी क्रियायें Vagus nerve द्वारा ही होती हैं।

शरीर में impulses हुआ करती हैं वह प्राण, अपान, उदान, व्यान व समान प्राणों द्वारा हुआ करती है। इन पाँच प्राणों का impulse हमारे अधीन नहीं है। अर्थात् हम इनकी लहरों को उत्पन्न होने से रोक नहीं सकते। यदि किसी अंगुलीमें बिच्छू काट खाये और हम चाहें कि दर्द का कष्ट हमें न हो, तो यह हो ही नहीं सकता दर्द मस्तिष्क तक पहुंचकर हमको बेचैन कर देगा, किन्तु Vagus nerve अथवा कुण्डलिनी पर प्रभुत्व प्रा-. कर लेने पर हममें यह शक्ति आ जाती है कि हम इन पाँच प्राणोंकी लहरों को उठने दें या न उठने दें। यहाँ तक कि हममें इतनी शक्ति आ जाती है कि तमाम स्नायु-तन्तुओं की लहरों को बन्द कर दें और इस तरह शरीर के Karaboltic activity अर्थात् हृदय की धड़कन आदि क्रियाओं को भी रोक दें।

प्राणायाम में जब कुम्भक किया जाता है तब श्वास द्वारा oxygen शक्ति आनी बन्द हो जाती है और प्रश्वास द्वारा Caroonic acid gas) निकलनी बन्द हो जाती है उस समय रक्त की Venosity बढ़ जाती है। इसकी वृद्धि से कुण्डलिनी के मूल में भारी धक्का लगता है। नाभिचालन क्रिया में भी मूलाधार में इसी प्रकार बार-बार धक्का लगता है। उस समय कुण्डलिनीमें एक लहर पैदा होने लगती है और वह लहर मूलाधार व स्वाधिष्ठान चक्रों से होकर मणिपूरक चक्र में पहुँच जाती है। प्राणायाम के साथ बन्ध भी किया जाता है। यह बन्ध तीन प्रकार के हैं। मूलबन्ध, उड्डियानबंध तथा जालन्धरबंध- मूलबन्ध से जब गुदा संकुचित होती है और उस पर धक्का लगा करता है तो अपान वायु का निकलना बन्द हो जाता है और स्वाधिष्ठान चक्र से होती हुई मणिपूरक चक्रमें पहुंचती है। जब चक्रों में लहर दौड़ती है तब समस्त Sympathetic fibres में लहर पैदा हो जाती है और उदर तथा आँतों में गैस एकत्र हो जाती है और उसको चक्करसे फुला देती है। Splanchnic area को रक्तनालियों के संकोचनसे (abdominal viscera) को रक्त मिलना कम हो जाता है और उदर व आंतों के स्नावका निकलना बन्द हो जाता है। शरीर में इस प्रकार की गड़बड़ी होने पर रक्तप्रवाह, श्वसन क्रिया व पाचन क्रिया में गड़बड़ी हो जाती है। हृदय तेजी से चलने लगता है, साधक दुर्बल होने लगता है और कुछ ज्वर मालूम होने लगता है। इस समय वह सशंकित हो जाता है और समझता है कि वह बीमार हो गया और भय के कारण प्राणायाम छोड़ देता है। परन्तु यह भय निर्मूल है उसको अपने गुरु की देख-रेख में बन्धों सहित प्राणायाम करते रहना चाहिए। यह समय कुण्डलिनी के जाग्रत होनेका होता है। कुण्डलिनी इसको resist करती है, किन्तु प्राणायाम करते रहने से वह medulla में अपने स्थान पर इधर-उधर हिलने लगती है और वह efferent और afferent inpulse भेजने लगती हैं, इसी को vagus escape कहते हैं। साधन के आगे बढ़ने पर वह ऊपर चढ़ने लगती हैं। जैसे-जैसे प्राणायाम के साथ बन्धों को किया जाता है, वैसे-वैसे कुण्डलिनी

ऊपर चढ़ती जाती है और मस्तिष्क में cortex में पहुँचकर ब्रह्मरन्ध्र चक्र में पहुँच जाती है।

इस vagus escape के होने पर जो शरीर में गड़बड़ी हो जाती है उसके सम्बन्ध में हमारे यहाँ के योगी कहा करते हैं कि जब कुण्डलिनी जाग्रत होती है, तब बड़े वेग से झटका देकर ऊपर की ओर अपना मुँह फैलाती है। ऐसा मालूम होता है, जैसे बहुत दिनों की भूख हो और अब जागने के साथ ही खानेको अधीर हो उठी हो। अपनी जगह से नहीं हटती पर शरीर में पृथ्वी व जल के जो भाग हैं उन सब को चट कर जाती है। उदाहरणार्थ—हथेलियों और पांव के तलों को शोषकर उनका रक्त मांसादि खाकर ऊपर के भागों को भेजती है और अंग-प्रत्यंग की सन्धियों को छान डालती है। नखों का सत भी निकाल लेती है। त्वचा को धोकर पोंछ-पोंछकर स्वच्छ करती है और उसे अस्थि पंजर से सटाये रखती है। पृथ्वी व जल इन दो भूतों के खाने के बाद सुषुम्ना में प्रवेश करके ऊपर पहुँच जाती है। उस समय जो चन्द्रामृत का सरोवर है वह उलट जाता है और वह चन्द्रामृत कुण्डलिनी के मुख में गिरता है। इस अमृत को पान करके कुण्डलिनी सन्तुष्ट हो जाती है। शरीर की जो सूखी पपड़ी रहती है वह भूसी की तरह निकल जाती है। उस समय योगी का शरीर हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। उसकी कान्ति केसर के रंग-सी हो जाती है। उस योगी के देह का प्रत्येक अङ्ग नया और कान्तिमय बन जाता है।

हृष्ट पुष्ट तन भये सुहाये।
मानहुं अबहिं भवन ते आये॥

नाभि-चालन क्रिया की यह विशेषता है कि कुण्डलिनी जाग्रत होकर afferent और efferent impulse भेजने लगती है किन्तु vagus escape नहीं होता और न पाचन क्रिया में गड़बड़ी होती है क्योंकि इस क्रिया में कुण्डलिनी के जगाने के साथ वैश्वानर अग्नि भी प्रदीप्त हो जाती है। बार-बार पल्टा खाते रहने से तथा मूलाधार पर धक्का लगने से प्राणवायु ईडा व पिंगला नाडियों में प्रवाहित न होकर सुषुम्ना में प्रवेश कर जाती है और अभ्यास को बढ़ाने पर ऊपर चढ़ने लगती है। नाभि-चालन एक अद्भुत क्रिया है जिससे पाचन प्रणाली भी ठीक रहती है। शरीर में कोई रोग भी नहीं होता तथा प्राणायाम बन्ध, मुद्रायें आदि करके जो कुण्डलिनी जाग्रत करने का कष्टमय साधन है वह सब इस क्रिया से सहज रूप में प्राप्त हो सकता है।

रहिमन बात अगम्य की, कहन-सुनन की नाहि।
जे जानत ते कहत नहि, कहत ते जानत नाहि॥

जो रहीम मन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाय।
जल में ज्यों छाया पड़े, काया भीगत नाय॥

—रहीम खानखाना

● श्री नन्दकिशोरसिंह "श्याम"
कनकपुर, वाराणसी

लेना मेरा शत्-शत् प्रणाम

श्री सिद्ध गुफा का द्वार शून्य, छायी सब ओर उदासी है।
हर आँख आँख में रुका हुआ, सावन क्यों बारह-मासी है।।

मन घुटा उड़ा-उड़ा सा है, यह देह न हो जैसे शव हो।
हर हृदय कलंकित लगता क्यों, नर लोक नहीं यह रौरव हो।।

हर रात प्रलय सी लगती है, हर दिन दावा-सा जलता है।
अन्तर में कोई महा नाग, जैसे विष-ज्वाल उगलता है।।

इस महा श्मशान में जलता है, जन्मों-जन्मों का नाता।
बैठ यहीं पर कोई अपना, मारण मन्त्र जगाता।।

जिस करुण-दृष्टि की छाया में, तब मन को तपन बुझाते थे।
निज क्रूर कर्म के भोग जहाँ, जाकर झुठलाये जाते थे।।

जो पाप दूसरों के दुर्वह, निज पर ले झेला करते थे।
अपने बच्चों के बोझ सदा, बच्चों सा खेला करते थे।।

वह लूट लिया दुष्काल चक्र, उज्ज्वल ध्रुवतारा लूट लिया!
चलने को पंथ अजेय पड़ा, पाथेय हमारा लूट लिया!!

यह व्यथा सँजोये आठ पहर, अब जीवन भर जाना होगा!
ऐसा भी क्या कभी; किसी का, भाग्य किसी ने छीना होगा!!

लौकिक मर्यादा नाथ यही, जिनसे अपने कुछ नाते हैं।
अन्तिम प्रयाण की वेला में, वे पास बुलाये जाते हैं।।

ऐसा तो कुछ भी हुआ नहीं, यह खेल कौन-सा खेल चले।
हत-भाग्य रहे हम दूर पड़े, तुम कितनी पीड़ा झेल चले।।

हर हाट शून्य हर बाट शून्य, हो गया सभी अब ठाट शून्य !
जुड़ती तृषितों की भीड़ जहाँ, वह अन्तः श्रावी घाट शून्य !!

मिलगया कल्पतरु राह चलते, वट-छाँह समझ हम बैठ चले ।
प्राप्तव्य न अपना पहचाना, मृग-तृषा लिये हम ऐंठ चले ।।

वसुधे ! तू कब तक स्वार्थों की, निर्विघ्न सड़ाँधें पालेगी ।
कब तक तू अपने ही शाश्वत, नातों पर मिट्टी डालेगी ।।

कृत-युग, त्रेता, द्वापर अपनी, अन्तर्गुहा टटोलो तो !
हे वर्तमान मत मौन रहो तुम, हृदय हाथ धर बोलो तो !!

प्रभु रामलाल को छोड़ कहो, गुरुदेव सदृश वह कौन रहा !
सबके लिये अबाधित गति, जिसके करुणा का स्रोत बहा !!

तुम छोड़ स्वजन सम्बन्ध सभी, कैवल्य नहीं कैलाश गये !
प्रभु रामलाल की थाती तुम, प्रभु रामलाल के पास गये !!

अपनी रोपी फुलवारी से, तुम नाता तोड़ न पाओगे ।
निश्चय यह हृदय, हृदय के धन, निज क्रीड़ा क्षेत्र बनाओगे ।।

वह दिया सभी को मुक्त-हस्त, बिन पाया नहीं रहा कोई ।
पहुँची हर उर में तेज किरण, चाहे वह कहीं रहा कोई ।।

भव-भोग-रोग पीड़ित जन को, छूकर जो चंगा करता था ।
अपुनीत गड़हियों गड्ढों को, पथ चलते गंगा करता था ।।

मिल पाया एक न उदाहरण, छूछा हो जिसको टाल दिया ।
है स्वर्ग तो छोटी झोली में, अपवर्ग सहज ही डाल दिया ।।

वे सिद्धेश्वर निज शिष्यों में, जब योग बीज तुम बोते थे ।
सम्पूर्ण योग योगांग सहित, स्वयमेव प्रस्फुटित होते थे ।।

उन चरणों का आश्रय पाकर, कितने-कितनों को तार गये ।
कितने अमरों का लोक लाँघ, संसृति की सीमा पार गये ।।

तुम तोड़ कलेवर का बन्धन, उन्मुक्त अनन्त विराट बने ।
इस "श्याम" अकिंचन के प्रभु जी, तुम रहो हृदय-सम्राट बने ।।

हो जहाँ और जैसे भी हो, लेना मेरा शत्-शत् प्रणाम ।
यात्रांत समय श्री चरणों में, पाऊँ विराम हे पूर्ण काम ।।

● श्री शिवनारायण उपाध्याय "शिव" एम० ए०, बी-एड०

गुरुदेव के महाप्रयाण की प्रतीति

परम पूज्य अनन्त श्री गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के निर्वाण की प्रतीति मुझे इस प्रकार संकेतात्मक ढंग से हुई :—

"मैं नियमित रूप से देव आराधना, पूजा, जप आदि में करीब २ घण्टे का समय नित्य लगाता हूँ, पूजा स्थल में ही गुरुदेव श्री चन्द्रमोहनजी महाराज का मढ़ा हुआ चित्र लगा है जिसकी पूजा भी नित्य करता हूँ।

आषाढ़ शुक्ल १५ दिनांक ७ जौलाई १९९० शनिवार को गुरु पूर्णिमा के अवसर पर अपनी पूजा क्रम में नित्य की भाँति मैं गुरुदेव के चित्र को कपड़े से पोंछ रहा था, अकस्मात् मढ़े हुए चित्र का काँच बीच में से तड़क कर टूट गया। कांच टूटने की अकल्पित आवाजसे मैं स्तब्ध व आश्चर्य-चकित होकर सोचने लगा। आज गुरु पूर्णिमा की पूजा में गुरुदेवने यह क्या चमत्कार दिखाया! कांच टूटना एक अपशकुन तो है ही, क्या गुरुदेव इस फ्रेम से कांच तोड़कर कहीं चले तो नहीं गये" आदि" आदि। पूजन तो किया पर मन कम्पित ही रहा। केवल विचार ही चलते रहे पर निश्चितता पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सका। चार दिन बाद ही 'सिद्धयोग' के माध्यम से गुरुवर के महाप्रयाण की सूचना मिली। आज भी मेरे कानमें 'कांच टूटने का स्वर' और अनहोनी की पूर्व आशंका की भावना बनी हुई है। मुझे लगा गुरुवर ने मुझे प्रयाण का संकेत गुरुपूर्णिमा के दिन की सेवा में ही दे दिया। यह चमत्कार उनके ईश्वरत्व को प्रगट करता है।

मैं सन् १९७० से 'सिद्धयोग' के माध्यम में गुरुवर की लीलाओं से परिचित था। मेरे लेख व कवितायें भी "सिद्धयोग" में प्रकाशित हुए हैं। गुरुवर के दर्शन का सौभाग्य मुझे भोपाल में अग्रवाल धर्मशाला जुमेरातो में दिनांक ४-६-१९८८ रात्रि ११ बजे मिला। उस समय गुरुवर शयन कक्ष में थे। मैं व मेरे साथ तराने के सबंधी शिक्षक रामकृष्ण वर्मा, भंवरसिंह गिरदावर, गंगाप्रसाद, विजय कुमार आदि थे। सभी को सिसौदिया जी व श्री उमा बहन के सौजन्य से गुरुजी ने विराम के क्षणों में दर्शन दिये। मैंने अपनी एक रचना फ्रेम की हुई गुरु चरणों में भेंट की। मुझे वाचन का आदेश मिला। मैंने सस्वर पठन किया। गुरुवर ने प्रशंसा की व पीठ पर हाथ रख मुझे आशीष दिया तथा अपने हाथ से प्रसाद भी दिया।

दिनांक ४-६-१९८८ को कार्यक्रम के समापन मंच से भी उक्त रचना को पढ़ने का गुरुवर ने आदेश दिया। मैंने भक्तों की उपस्थिति में उसे पढ़ा और पुनः गुरु-आशीष प्राप्त किया। इसी समय मेरी कन्या कामायनी के विवाह के लिए वर की तलाश की तलाश की चिन्ता का मैंने गुरुवर से निवेदन किया। मुझे उसी समय गुलाब-पुष्प का प्रसाद दिया और सुयोग्य वर मिलने का आशीष भी। मुझे सुयोग्य वर मिला और नवम्बर १९८६ में मैंने अपनी पुत्री का विवाह भी कर दिया। गुरुवर के हस्ताक्षरित पत्र भी मुझे पुष्प-प्रसाद सहित यथा समय मिला करते थे। जून १९८९ में "सिद्धयोग" कवर पृष्ठ ३ पर मेरी गुरुवर स्व० रामलालजी महाराज की स्मृति में रचित कविता प्रकाशित हुई थी पर अङ्क की प्रति मुझे नहीं मिली थी। मैंने गुरुवर को पत्र लिखा, गुरुवर ने कार्यालय को मुझे अङ्क भेजने को लिखा व मुझे भी पत्र द्वारा सूचित किया। मुझे दिनांक २७-११-१९८९ को उक्त अङ्क की प्रति डाक से मिली। यह था गुरुवर का अनन्य स्नेह भाव।

एको देवः

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः,
सर्व व्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्म्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः।
साक्षी चेता केवली निर्गुणश्च॥

श्वे० उ० ६/११

एक परमात्मा देव ही सब पदार्थों में छिपा हुआ है। वह सर्वव्यापी है और सब भूतों का अन्तरात्मा है। वह कर्मफल का देने वाला और सब पदार्थों का आश्रय है। सबका साक्षी चेतन केवल अकेला और निर्गुण है।

सर्वव्यापी और सर्वभूतान्तरात्मा में भेद है। एक पदार्थ व्यापक होता हुआ आवश्यक नहीं है कि वह उसका जीवनाधार भी हो। जैसे आकाश सब में है किन्तु जीवन तो आत्मा के आश्रय से है। इसी कारण 'सर्वव्यापी' कहकर भी सर्वभूतान्तरात्मा कहा आदि।

ऋषि लोग ही वेद के गम्भीर आशय को समझ सकते हैं।

● श्री डॉ॰ विजयसिंह

महात्मा चण्डीदास से पालब्रण्टन की भेंट

(२)

योग विद्या कितनी महान है, यह बात पालब्रण्टन की समझ में, भारत भ्रमण के दौरान मिले सन्त महात्माओं के संगति से समझ में आने लगी तब उसकी उतनी ही उत्सुकता आत्मसाक्षात्कार हेतु बढ़ती गयी। वाराणसी में उस समय के विख्यात सन्त विशुद्धानन्द ने पालब्रण्टन को उपदेश देते हुए कहा था कि— योग के अभ्यास के लिए एक दिन निश्चित समय ठीक करलो और उसमें किसी भी हालत में विचलित न होना और अभ्यास की अवधि को क्रमशः बढ़ाते जाओ। ध्यान रखना मेरुदण्ड सीधा रहे। इससे मानसिक शक्ति प्राप्त होगी। शरीर का मन पर और मन का शरीर पर असर होता रहता है। सम्बोध के लिये योग ही मात्र एक सर्व साधन है और योग सिद्धगुरु की कृपा से ही सुलभ हो पाता है। ऐसा ही मन्तव्य कलकत्ता में स्वामी रामकृष्ण के प्रिय शिष्य उत्तम योगी मास्टर महाशय ने भी पालब्रण्टन को दिया था। परन्तु अभी पालब्रण्टन भटक रहा था ऐसे गुरु की तलाश में, जो उसके मन, चित्त और हृदय को बरबस आकर्षित कर आत्मोत्कर्ष की ओर बढ़ा दे।

पंजाब प्रान्त की यात्रा के समय अचानक एक दिन दूर ग्रामीण इलाके में पीपल के तले बैठे एक फक्कड़ योगी चण्डीदास को देखकर पालब्रण्टन उनसे वार्ता हेतु उनके पास गया। क्योंकि प्रथम दर्शन में ही उसे चण्डीदास विशेष प्रिय लगने लगे थे। उनके बालोंकी लटें, मुख की गम्भीरता काली आँखों की अपार चमक और अनूठी दिव्य ज्योति सबने बरबस पालब्रण्टन को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। पालब्रण्टन के प्रणाम करने पर चण्डीदास ने हाथ उठाकर आशीष देते हुए कहा—भगवान तुम्हारी रक्षा करें। क्यों तुमने तो बड़ा लम्बा सफर किया न ?

पालब्रण्टन ने हामी भरली। वे अचानक प्रश्न कर बैठे— "मास्टर महाशय के बारे में तुम्हारी क्या राय है।" पालब्रण्टन आश्चर्य चकित रह गया। क्योंकि गत दिनों में कलकत्ते में उनका दर्शन उसने किया था। आज पंजाब के ग्रामीण अंचल में बैठा हूँ, महात्मा अचानक क्योंकर पूछ रहे हैं ? बाह्य रूप से उत्तर दिया—महात्मन् उन्होंने मेरे हृदय को हर लिया है। पुनः एक बार मैं उनके दर्शन करने की अभिलाषा मन में संजोये हुए हूँ। योगी ने अपना सिर दृढ़तापूर्वक अस्वीकारकी मुद्रामें हिला दिया, कहा—

नहीं, तुम फिर कभी उनका दर्शन नहीं

कर पाओगे। अभी-अभी यमदेव उनके प्राणों का हरण किया चाहते हैं। (योगी में दूर दृष्टव्यता) समझकर पालब्रण्टन ने मौन रह-कर पुनः पूछा—महात्मन, योगियों के जीवन तथा विचारों को जान लेने में मेरी बड़ी उत्कण्ठा है। कृपया मुझे बता दीजिए कि आप योगी कैसे बने ?

महात्मा चण्डीदास अनमनस्क होकर बोले—भूत केवल भस्म की एक ढेरी है। मुझसे यह आशा न करें कि हमें अपने मृत अनभूतियों का बयान करूँ। मैं न तो भूत में रहता हूँ न भावी में ही। मानव की आत्मा-नुभूति की गम्भीरता में वे अनभूतियाँ कुछ भी मूल्य नहीं रखतीं, वे छायामात्र हैं।

पालब्रण्टन—किन्तु हम सभी समय के पेंच में फँसे हुए हैं। क्या मैं मानलूँ कि भूत और भावी सब आपको दृष्टिगोचर हैं।

चण्डीदास—मैं तो शाश्वत, नित्य सत्ता में रहता हूँ। कभी भी यह जानने की कोशिश नहीं की कि आगे चलकर मेरे ऊपर क्या बीतने वाला है।

पालब्रण्टन—परन्तु दूसरों के लिये तो भावी का आप पता लगा सकते हैं ?

चण्डीदास—हाँ यदि चाहूँ तो।

पालब्रण्टन—कृपया मेरे ऊपर भविष्य में घटित होने वाली कुछ बातें बता दें।

चण्डीदास—इन बातों को तुम क्यों जानना चाहते हो ?

पालब्रण्टन—गम्भीर प्रश्न मन को सदा व्याकुल किये रहते हैं। मैं आत्मानुभव की खोज में यहाँ आया हूँ। मुझे यही मालूम हो जाय कि मेरी यह खोज निष्फल तो नहीं होगी।

चण्डीदास उसकी ओर कुछ देर तक देखते रहे फिर बोले—मैं विद्वता से विभूषित नहीं हूँ किन्तु तुम मेरी बात ध्यान देकर सुनो। मेरा कहना यह है कि तुम्हारी खोज व्यर्थ नहीं जायेगी। तुमने जहाँ से भारत भ्रमण शुरू किया था उसी जगह चले जाओ, अमावस के दिन तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी। वहीं तुम्हें मार्ग मिलेगा। जितनी जल्दी जा सको उतनी जल्दी वहाँ पहुँच जाओ।

पालब्रण्टन तुम्हारी प्रथम यात्रा बम्बई से प्रारम्भ हुई थी, व्यर्थ समय बर्बाद मत करो। कल ही बम्बई के लिये रवाना हो जाओ। जब तुम पूर्णकाम होकर भारत छोड़कर पश्चिम लौट जाओगे उस समय सख्त बीमार पड़ोगे, परन्तु तुम्हारी रक्षा हो जावेगी। हमारी भूमि का तुम तीन बार दर्शन करोगे, अब भी एक ऋषि तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं और चूँकि तुम उनके साथ पुराने बन्धनों से बँधे हुए हो अतः तुम उनके पास अवश्य जाओगे।

समयान्तर से चण्डीदास की भविष्यवाणी पूर्णतः चरितार्थ हुई। बम्बई में एक सन्त पालब्रण्टन को एक महर्षि के पास लिवा ले गये जहाँ पर पालब्रण्टन ने उनसे योगदीक्षा प्राप्त कर समाधिजन्य सुख का संधान प्राप्त कर लिया था।

राम-नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर-बाहिरहु जो चाहसि उजियार॥

● श्री केशव उपाध्याय
वाराणसी

अनन्य चिन्तन का फल—
प्राण-रक्षा

प्रस्तुत प्रसंग में अपने एक आदरणीय गुरुभाई श्री राजदेव जी यादव के साथ घटित एक सड़क दुर्घटना का वर्णन करने का प्रयास किया जा रहा है। श्री राजदेव जी यादव उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के निवासी हैं तथा उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद्में इन्जीनियर के पद पर वाराणसी जिले में कार्यरत हैं। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि ये अपनी नियमानुवर्तिता के बड़े ही पक्के साधक हैं। शायद यही कारण है कि ये आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेवजी महाराज के बड़े ही कृपापात्र शिष्यों में हैं। इस सन्दर्भमें आपको इस तथ्य से अवगत कराना उचित होगा।

श्री प्रभुजी की इस आज्ञा का कि लल्ला! तुम सब नित्य नियम से प्रातः पाँच से सात बजे तक ध्यानाभ्यास किया करो, श्री यादव जी अक्षरशः पालन करते हैं। इनके साथ यात्रा करने का सुअवसर यदा-कदा मुझे भी मिल जाया करता है। मैंने अनुभव किया है कि अपनी यात्रा के दौरान श्री यादवजी प्रायः श्री प्रभुजी के चरित्रों का वर्णन किया करते हैं एवं अपने गुरुमन्त्र का जप भी करते रहते हैं। उन्होंने स्वयं एक ऐसी सड़क दुर्घटना का वर्णन सुनाने का कष्ट किया जिसमें उनकी मृत्यु प्रायः निश्चित सी हो थी। परन्तु श्री प्रभुजी की अपार कृपा से यह दुर्घटना इस प्रकार घटित हुई कि उनको पता तक नहीं चल पाया। श्री राजदेवजी यादव बाल-बाल बच गये। इस घटना का वर्णन, सुनाते समय श्री राजदेवजी यादव का शरीर कई बार रोमांच से भर गया। इस घटना को घटित हुए मात्र अभी कुछ महीने हो ही रहे हैं।

श्री यादव वाराणसी से अपने स्कूटर द्वारा अपने विभागीय निवास स्थान हायडिल कालोनी सारनाथ को जा रहे थे। रास्ते में उनका स्कूटर रिजर्व में आ गया, अतः उसमें पेट्रोल लेने वे आशापुर पेट्रोल पम्प पर पहुँच गये। इस सन्दर्भ में आपको इस तथ्य से अवगत करना मैं उचित समझता हूँ कि वे श्री प्रभुजी के द्वारा प्रदत्त मन्त्र का जप स्कूटर पर चलते समय यह बराबर कर ही रहे थे! पेट्रोल पम्प से पेट्रोल लेने के बाद उन्होंने अपनी अगली यात्रा भी श्री प्रभुजी का चिन्तन करते हुए आरम्भ की। इस पेट्रोल पम्प से उनके निवास-स्थान की दूरी दो किलोमीटर से कम ही है। पेट्रोल पम्प से वे मात्र सौ मीटर के लगभग आगे बढ़े होंगे कि विपरीत दिशा से आती हुई

एक मोटर साइकिल ने जिस पर दो आदमी सवार थे, टकराहट हो गयी ।

इस स्थान पर जहाँ स्कूटर-मोटर साइकिल की जोरदार टक्कर हुई थी प्रायः दुर्घटना हुआ करती हैं और आस-पास की जनता में यह विश्वास है कि यहाँ होने वाली दुर्घटना में अवश्य ही किसी न किसी को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। श्री यादव जी भी आम-जनता की इस किम्वदन्ती से पूर्णरूपेण परिचित थे । टक्कर होने के पूर्व श्री यादवजी प्रभु चिन्तन में मग्न थे। अतः यह घटना घटने के समय उनके मन में कोई ऐसा भाव नहीं आया। कुछ सैकेण्ड के लिए यदि कोई भाव आया तो वह मात्र इतना ही था कि अब तो दुर्घटना हो ही गई और मेरा शरीर अवश्य ही छूट जायेगा । यह भाव मन में आने पर उनके अन्दर श्री प्रभुजी की करुणा कृपा का स्मरण बड़ी ही तीव्र गति से उभर आया। इसके बाद दुर्घटना कैसे घटी एवं दुर्घटना के बाद क्या हुआ, इस बात की जानकारी रंच मात्र भी उन्हें अनुभव में नहीं आई। वे अपनी सहजावस्था में तो दुर्घटना के बाद करीब चार-पाँच घण्टे व्यतीत हो जाने पर आये। घटना का यह एक पहलू रहा।

एक्सीडेण्ट होने वाले मोटर साइकिल पर सवार युवकों के कथनानुसार यादवजी अपने स्कूटर पर काफी तेज गति से गाजीपुर की तरफ जा रहे थे। उनके स्कूटर की तेज और अनकंट्रोल स्पीडको देखकर मोटर साइकिल चालक को यह पूर्वाभ्यास हो गया कि यह स्कूटर चालक अवश्य ही अपना स्कूटर हमारी मोटर साइकिल से लड़ा देगा। अतः उन्होंने अपनी मोटर साइकिल को सड़क के बायीं तरफ बिल्कुल धीमी गति से चलाना आरम्भ किया। उनका कहना था कि इन्होंने जान-बूझकर अपना स्कूटर हमारी मोटर साइकिल से लड़ाया है।

प्रत्यक्ष दर्शियों के अनुसार श्री यादवजी बड़ी ही तीव्र गति से अपनी गलत साइड से चल रहे थे, एवं मोटर साइकिल चालक अपनी सही दिशा से धीमी गति से चल रहा था। यादवजी का स्कूटर जो काफी तेज गति से चल रहा था जाकर मोटर साइकिल के पिछले हिस्से से लगा जिसके कारण मोटर साइकिल का साइलेन्सर टूट गया एवं पीछे बैठे व्यक्ति के पैर में गम्भीर चोट आई तथा मोटर साइकिल पर सवार दोनों व्यक्ति मोटर साइकिल के साथ जमीन पर गिर गये एवं उन्हें चोट आई। मोटर साइकिल को टक्कर मारकर श्री यादवजी का स्कूटर करीब दो फीट आगे बढ़ गया एवं फिर अपने आप बन्द हो गया। इसके बाद वह जमीन पर ऐसे धीरे-धीरे गिरे जिसे देखने वालों ने ऐसा अनुभव किया कि किसी ने पकड़कर धीरे से जमीन पर बिटाया हो। इसके बाद श्री यादव जी अपने स्कूटर से सहज भाव से उतरे एवं इसके बाद पैर फैलाकर जमीन पर बैठ गए।

मोटर सायकिल सवारों द्वारा झगड़े का वातावरण बनाये जाने पर वे उनसे उलझते भी रहे एवं उनके अपशब्दों का अपनी कड़वी भाषामें जवाब भी देते रहे। वे गाड़ी के नुकसान ठीक कराने तथा अपना इलाज कराने के लिए पैसे की माँग कर रहे थे यादवजी बार-बार नकारात्मक उत्तर दे रहे थे। वे दोनों इन्हें डरा-धमका रहे थे, इन्हें मारने-पीटने एवं गाड़ी को छीनने के चक्कर में थे। इसी बीच हायडिल कालोनी सारनाथ का एक लड़का इस रास्ते से गुजरा। वह

मात्र दो-तीन मिनट वहाँ रुका एवं उसे पूरी वस्तु स्थिति की पूर्णरूपेण जानकारी हुई। इसके बाद वह तत्काल हायडिल कालोनी पहुँचा वहाँ उसने कालोनी के लोगों को यह सूचना दी कि यादव जी के स्कूटर का एक्सीडेन्ट हो गया है और शायद गलती इन्हीं की है। काफी लोग उन्हें घेरे हुए हैं एवं जिस मोटर साइकिल से स्कूटर लड़ा है उसके सवार यादव जी को अपशब्द कह रहे हैं। आप लोग जल्दी चलिये वरना देर होने पर कुछ और हो सकता है। कालोनी में उपस्थित कर्मचारीगण तत्काल ही घटना स्थल पर पहुँच गये। कालोनी के कर्मचारीगण एवं श्री यादवजी के हितैषी ज्योंहीं घटना स्थल पर पहुँचे यादव जी की जबान बन्द हो गई और वे लुढ़क से गये। इसके बाद वहाँ उपस्थित समुदाय ने उन्हें बुलवाने का प्रयत्न किया परन्तु वे बोल नहीं सके। इसके बाद उन्हें लादकर लोग डाक्टर के पास ले गये, डाक्टर ने उपचार शुरू किया।

डाक्टर ने बतलाया कि इन्हें चोट तो कहीं मालूम नहीं होती, मैं दवा दे रहा हूँ, आप लोग इन्हें दवा खिला दीजियेगा फिर जैसी स्थिति होगी बता दूँगा। मोटर साइकिल सवार भी अपना उपचार कराने उसी डाक्टर के पास गये। इन लोगों को गम्भीर चोटें आयीं थीं। डाक्टर ने इन लोगों का उपचार करते हुए समझाया कि जो होना था वह तो हो ही गया, यादव जी भी हमारे उतने ही प्रिय हैं जितने आप लोग। हमने सुना है कि आप लोग उन्हें अपशब्द कह रहे थे। यह कार्य आप लोगोंने अच्छा नहीं किया। डाक्टर साहब की इच्छा को जानकर उन लोगों को बड़ा ही पश्चाताप हुआ एवं उन्होंने अपने इस कार्य के लिये खेद प्रकट किया प्रारम्भिक उपचार के बाद एक ठेल पर यादव जी तथा दूसरी ठेलपर उनका स्कूटर कालोनी के कर्मचारियों द्वारा सारनाथ हायडिल कालोनी लाये गये। एक कोठरी में बिस्तर पर यादव जी लिटाये गये एवं उनका स्कूटर यथा स्थान रख दिया गया। अपने क्वाटर पर कुछ समय विश्राम करने के बाद यादवजी होश में आये एवं उन्होंने अपने स्कूटर में डब्बे से निकाल कर मोबिल डाला तथा फिर बेहोश हो गये। मोबिल के डब्बे से मोबिल निकालने के बाद यादव जी ने डब्बे का ढक्कन नहीं बन्द किया था। यादव जी की हालत उनके परिवार के सदस्यों को एवं उनके हितैषियों को बाहर से तो खराब ही लग रही थी। परन्तु लीलाधारी की लीला को कोई क्या जाने? यह स्थिति यादव जी के ध्यान की थी या बेहोशी की, इस बात को तो हमारे आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेवजी महाराजही जानते होंगे या जानते होंगे हमारे आदरणीय गुरु-भाई श्री यादवजी! अब आगे प्रसंग कुछ इस प्रकार घटित हुआ कि दूसरे दिन सुबह यादव जी करीब साढ़े तीन बजे जगे एवं अपना नैतिक कार्यक्रम एवं विधिवत् आरती पूजन तथा ध्यानाभ्यास का कार्य किया। इसके बाद वे अपने उस कमरेमें गये जिस कमरे में उनका स्कूटर रखा गया था। उन्होंने देखा कि मोबिल के डब्बे का ढक्कन खुला हुआ है, तो अपनी बच्ची से बोले कि मोबिल के डब्बे का ढक्कन किसने खोल दिया है। उनकी बच्ची ने कहा कि आपने ही तो कल खोलकर गाड़ी में मोबिल डाला था और इसे खुला छोड़ दिया था। उन्होंने कहा कि मुझे तो स्मरण नहीं है कि इस डब्बे को मैंने खोला है और मोबिल

वाला है। उनकी बच्ची ने कहा कि आप तो बेहोश थे, आपके स्कूटर का एक्सीडेन्ट एक मोटर साइकिल से हो गया था और आप तथा आपका स्कूटर लादकर यहाँ लाये गये। आपकी हालत बड़ा चिन्ताजनक थी। श्री यादव जी को अपनी बच्ची की इस बात पर सहज विश्वास नहीं हो पाया। उन्होंने इसके बाद जाकर जब अपना स्कूटर देखा तो उन्हें आश्चर्य हुआ एवं आपको भी आश्चर्य होगा कि उनके स्कूटर में एक्सीडेन्ट का कोई भी निशान नहीं था। और तो और उनके स्कूटर गाड़ी का कहीं से भी पेन्ट तक नहीं छूटा था। उनका स्कूटर अभी नया है अतः कोई भी निशान उसपर होता तो स्पष्ट दिखलायी देता। उनके द्वारा यह घटना सुनने के बाद मैंने उनके इस स्कूटर को देखा एवं मुझे भी महान आश्चर्य हुआ कि इतनी बड़ी दुर्घटना होने वाले स्कूटर पर खरोंच तक का निशान नहीं पड़ा है।

यह है उन करुणा सागर की कृपा जो यादवजी के प्राण रक्षा का निमित्त बनी। अब आप परिस्थितियों पर जरा विचार करने का कष्ट करें। वहाँ होने वाली दुर्घटना में जब मृत्यु होनी ही थी तो अकारण दयालु श्री आराध्यदेवजी की करुणा कृपाके अलावा उन्हें बचाने वाला और है ही कौन? यदि यही दुर्घटना उनके निवास-स्थान से काफी दूर हुई होती तो उनकी क्या स्थिति होती। अवश्य ही बड़ी विषम स्थिति होती। मैं इस घटना को कृपा पूर्वक बतलाने वाले अपने आदरणीय गुरुभाई श्री राजदेव जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए इस लेख को यहीं विश्राम दिया जा रहा है एवं श्री प्रभुजी के चरणों में कोटिशः साष्टांग प्रणाम के साथ प्रार्थना है कि वे अपनी करुणा सदैव बनाये रखने का अनुग्रह करते रहें।

दैनिक कार्यक्रम का महत्व

अगर हम चाहते हैं कि हमारी वृत्ति मुक्त और प्रसन्न रहे, तो हमें अपने व्यवहार का एक क्रम बाँध लेना चाहिए। हमारा नित्य का कार्यक्रम किसी-न-किसी निश्चित आधार पर चलना चाहिए। मन तभी मुक्त रह सकता है, जबकि हमारा जीवन उस मर्यादा में और एक निश्चित नियमित रीति से चलता रहे। नदी स्वच्छन्दता से बहती है, परन्तु उसका प्रवाह बँधा हुआ है। यदि वह बद्ध न हो, तो उसकी मुक्तता व्यर्थ चली जायगी। ज्ञानी पुरुष का उदाहरण अपनी आँखों के सामने लाओ। सूर्य ज्ञानी पुरुषों का आचार्य है। भगवान् ने पहले-पहल कर्मयोग सूर्य को दिखाया, फिर सूर्य से मनु को, अर्थात् विचार करने वाले मनुष्य को, वह प्राप्त हुआ। सूर्य स्वतन्त्र और मुक्त है। वह नियमित है—इसीमें उसकी स्वतन्त्रता का सार है। यह हमारे अनुभव की बात है कि हमें एक निश्चित रास्ते से घूमने जाने की आदत है, तो रास्ते की ओर ध्यान न देते हुए भी मन से विचार करते हुए हम घूम सकते हैं। यदि घूमने के लिए हम रोज-रोज नये रास्ते निकालते रहेंगे, तो सारा ध्यान उन रास्तों में ही लगाना पड़ेगा। फिर मन को मुक्तता नहीं मिल सकती। सारांश यह है कि हमें अपना व्यवहार का कार्यक्रम इसलिए बांध लेना चाहिए कि जीवन एक बोझ-सा नहीं, बल्कि आनन्दमय प्रतीत हो। —नारायण स्वामी

● श्री विष्णुप्रसाद व्यास

पनघट का मोह

(गताङ्क से आगे)

तीसरा शिष्य मोहहर गुरु आज्ञानुसार पनघट पर आकर बैठा, नगर और गाँवों के पनघट सदा नई-नई लीलाओं से भरपूर रहते हैं। स्त्री और पुरुषों के टोल के टोल वहाँ इकट्ठे मिलते हैं, नई-नई बातों का विवाद चलता है। छैल बटाऊ अनेक प्रकार की दुष्ट वृत्ति से वहाँ आकर खड़े होते हैं। स्त्रियाँ अपने-अपने घर की सुख-दुःख की बातें अन्योन्य सखी-सहेलियों से करती हैं, नंगी उघाड़ी बातें करती हुई अनेक छल छन्द की बातें करती हैं। स्त्रियाँ अर्द्ध नग्न अवस्था में स्नान भी करती हैं। उसे देख साधुओं का मन भी चलायमान होता है। तब संसारी मनुष्यों का तो कहना ही क्या ?

पनघट पर आकर कितनी ही स्त्रियां तो अमर्याद हो जाती है और उनके अंग प्रत्यंग पर सबकी नजर पड़ती है। शीलवान को भी मोह उपजावें ऐसे हाव-भाव उनमें देखे जाते हैं और कामीजन भी अमर्यादा से बरतते हैं। पनघट ऐसा स्थान है कि वहाँ भले-भले संत भी अपना स्वरूप भूल जाते हैं। कर्म और वाणी से नहीं तो मन में तो कुसंकल्प करते ही हैं, पनघट पर धर्मशील तथा अधर्मशील दोनों प्रकार की स्त्रियाँ आती हैं वहाँ सबका रहस्य जानने वाले बड़े-बड़े समर्थ साधु पुरुषों के चित्त भी चलायमान हो जाते हैं। ऐसे स्थान पर मोहहर जाकर बैठा है। उसका लावण्य अद्भुत है, कुटिल कामनियाँ उस पर कुटिलता की दृष्टि रखती है। धर्मशील स्त्रियाँ महात्मा का भांति भक्ति-भाव से दर्शन करती हैं, नवयौवना साधु पुरुषों को ललचाने का प्रयत्न करती हैं। नित्य-नित्य शरीर को हृष्ट पुष्ट बनाने वाले और कामोत्पादक-वीर्य-वर्धक भोजन उसकी सेवा में लाकर रखती है विषय लुब्ध स्त्रियाँ मोहहर को ललचाने को अनेक प्रकार के हाव-भाव और नाज-नखरे करती हैं, तथापि मोहहर का मन जरा भी चलायमान नहीं होता है। उसके कानों में किसी की वाणी का स्पर्श नहीं होता, उसकी दृष्टि नासाग्र से दूर नहीं होती। एक निष्ठ पुरुष की भांति दृढ़ आसन लगाकर वह बैठ रहा है।

प्रभात से सायंकाल तक, गुरु आज्ञानुसार वह पनघट की लीला देखता रहता है। वह अनेक पदार्थों को देखता है, और अनेक शब्द सुनता है, पर बधिर है, खाता भी है, पीता भी है पर किसी वस्तु से मोह नहीं करता है। कपट-कुशल स्त्रियां उस पर आरोप लगाती हैं पर वह किसी की परवाह नहीं करता है न किसी के बुलाने पर ध्यान देता है। अपने

मनोविकारों पर उसने ऐसा अंकुश डाल लिया है कि किसी प्रकार इन्द्रियों में विक्रिया होने नहीं देता। परमब्रह्म के जिज्ञासुओं को अनेक भोगों के समागम में भी और दृष्टि से ऐसा चैतन्य रहना पड़ता है जिससे किसी क्षण भी कुसंकल्पवश हो जाने पर अपने तपोबल में अन्तर पड़ जाने की भूल न हो जाय।

ऐसी स्थिति में मोहहर अपना चातुर्मास व्यतीत करने लगा। दृढ़ निश्चय निग्रही शिष्य गुरु वचनों पर श्रद्धा रखने वाला, मोह को मारने वाला चारमास तक पनघट पर ही बैठा रहा, उसे शंका होती थी कि इस विषम स्थान पर मुझे भेजने का गुरु का क्या प्रयोजन रहा? कभी उसे शंका होती थी कि— "वासना उसके हृदय में उत्पन्न हो जाये तो क्या होगा? वासना बढ़ने से विषय बढ़ता है, विषय बढ़ने से वासना बढ़ती है और उसके परिणाम से जीव को चौरासी के झोंके खाने पड़ते हैं। साधु पुरुष को संसारी वासनाओं से भली-भांति मुक्त होने के लिये, विषय वासना को भस्म कर देना चाहिये। पर पनघट पर आने वाले अजनबी जीवों की अजनबी बातें सुनने से, वासना और विषय बढ़ना सम्भव है क्योंकि मोहक पदार्थों के दर्शन और चिन्तन से वासना जागृत होती है और उससे मानसिक संसार प्रथम उत्पन्न होता है और फिर सत्य संसार भोगने की लालसा होती है अन्त में भोगों से यह लिपट जाता है।

अतएव साधु पुरुषों को तो चिन्तन क्रिया और वासना जिस प्रकार हो सके त्याग देना चाहिये। मैं वासना को ही भस्म करूंगा, तो सुरक्षित रह सकूंगा। "यह विचार कर उसने नव नाड़ी और दस इन्द्रियों को संयम में रख, वासनाओं का नित्य प्रणव जप से होम करना आरम्भ किया" मुझमें कुछ अपूर्णता देख गुरुदेव ने मुझे इस स्थान पर मेरे ही कल्याण के लिये भेजा है। मुझमें मोह का कुछ भी अंश होगा तो उसे शमन करने के लिये ही उन्होंने यह आज्ञा दी होगी। अब मुझे मोह त्याग कर, कञ्चन की भांति शुद्ध होना चाहिए, यह विचार उसके हृदयाकाश में उत्पन्न होते ही मोह मारने को, उसने ब्रह्मभाव की वासना को दृढ़ स्थान दिया। उसने क्रिया का ही नाश किया। क्रिया के नाशसे चिन्तन का नाश हुआ, चिन्तनके नाश से वासना का नाश हुआ। इस प्रकार रग-रग में से अहंकार का उसने नाश कर दिया, और जैसे सूर्य के प्रकाश में अन्धकार का नाश हो जाता है, वैसे ही संसार का सारा मोह नाश ब्रह्मभाव की वासना से लय हो गया।

प्रिय पाठकगण!

जो जीव ब्रह्मनिष्ठा और ब्रह्मज्ञान में कभी करता है, वह जीव अन्तमें नाशको प्राप्त होता है, अतएव ज्ञानी पुरुष को स्वस्वरूप में कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। क्योंकि प्रमाद से मोह, मोहसे अहंकार, अहंकारसे बंध और बंध से व्यथा होती है। मोहहर ने पनघट पर बैठने पर, क्षण भर के लिये भी स्वस्वरूप जानने में प्रमाद नहीं किया और गुरु प्रसाद से चातुर्मास उसने सुखपूर्वक व्यतीत किया।

जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।
हौं बौरी ढूंढन गई, रही किनारे बैठ॥

—सन्त कबीर

● श्री रवीन्द्रप्रकाश झा "सुदम"

अभिवादन में राम-राम

हिन्दू संस्कृति में अभिवादन हेतु कितने ही शब्द जैसे नमस्ते, प्रणाम, राम-राम, सीताराम, राधे-राधे आदि का प्रयोग किया जाता है। इनमें 'राम' शब्द एक ऐसा शब्द है जो ईश्वर के सहस्र नामों में एक विशेष स्थान रखता है।

'राम' शब्द की संरचना ठीक उसी प्रकार गणनात्मक है, जिस प्रकार ओंकार (ॐ) की संरचना वर्णनात्मक है। महाकवि तुलसीदासजी ने श्री रामचरित मानस में 'राम' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है-

एकु छत्रु एकु मुकुट मनि सब बरननि पर जोय।
तुलसी रघुवर नाम के बरन बिराजत दोय ॥

बालकाण्ड/२०

इसका तात्पर्य यह है कि हिन्दी वर्णमाला में 'र' और 'म' दो ही ऐसे अक्षर हैं जो हर अक्षर के ऊपर लगने की क्षमता रखते हैं। इसलिए ईश्वर के नामों में राम-नाम देने वाले ने इन अक्षरों को सर्वोपरि माना और प्रथम स्वर 'आ' का दीर्घ लेकर 'र' तथा 'म' के बीच (ा) देकर 'राम' शब्द की संरचना की जो ब्रह्म के समान स्वयं में पूर्ण है। कुछ लोग "राम" शब्द को अयोध्या नरेश दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र 'श्रीराम' तक ही सीमित मानते हैं, उनके लिये यहाँ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि 'राम' शब्द अयोध्या नरेश महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र 'श्रीराम' तक ही सीमित नहीं है, अपितु यह 'राम' शब्द आदि से है।

इसके अतिरिक्त 'राम' शब्द के महत्व का एक और गणनात्मक उदाहरण जो सत्संग में सुना है, प्रस्तुत कर रहा हूँ :—

जैसे जैन मतावलम्बियों में ७ (सात), इस्लाम अनुयायियों में ७८६ (सात सौ छियासी) की गिनती का धार्मिक महत्व है वैसे ही हिन्दू सम्प्रदाय में १०८ (एक सौ आठ) की गिनती का धार्मिक महत्व है। हिन्दू समाज में धार्मिक सन्तों/महन्तों के नाम के पहिले "श्री श्री १०८" का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त जयमाला में भी १०८ मणिकायें होती हैं। इस प्रकार हिन्दू समाज में १०८ की गिनती का धार्मिक तौर पर विशेष महत्व है और इस १०८ की गिनती का "राम" शब्द से भी विशेष सम्बन्ध है।

'र' हिन्दी वर्णमाला का २७वां (सत्ताईसवाँ) और 'म' २५वाँ (पच्चीसवाँ) व्यंजन है। इन दोनों की गिनती २७+२५ को जोड़ने पर ५२ होती है। इसमें स्वर दीर्घ 'आ' का स्थान २ की गिनती और मिलाने से यह संख्या ५२+२=५४ हो जाती है। यह ५४

(शेष पृष्ठ ४२ पर पढ़िये)

● श्रीमती शशिप्रभा 'मित्तल'

श्रद्धा-सुमन

न केवल मेरे किन्तु मेरे जैसे सहस्रों शिष्यों और योग साधकों के मार्ग-दर्शक करुणा की परम पावन मूर्ति सुविख्यात सिद्धयोगी पूज्यपाद गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज गत २५ जून की रात्रि में सहसा हम सबको अनाथ और निराश्रित अवस्था में छोड़कर परमतत्व में विलीन हो गये, यह हम सबका दुर्भाग्य ही रहा ! उनका महा प्रयाण अप्रत्याशित रूप में तब हुआ जब हम सबके कल्याण के लिए उनके मार्ग दर्शन की हमें अतिअधिक आवश्यकता थी। अपने सभी शिष्य साधकों के प्रति जिस प्रकार का करुण पूर्ण स्नेह उनके हृदय में भरा रहता था। जितना वात्सल्य भाव वे हम सब पर प्रकट किया करते थे उसकी कोई दूसरी उपमा हमें कहीं दृष्टिगोचर नही होती !

हमारे गुरुवर अपनी १५ वर्ष की अवस्था में ही महाप्रभुजी की चरण-शरण में आये थे। अपनी गुरु निष्ठा और ब्रह्मचर्य व्रत की अनुपम दृढ़ता तथा अनवरत योग-साधना के बल पर वे महाप्रभुजी के अत्यन्त प्रियतम शिष्योंमें समझे जाने लगे। महाप्रभुजी ने उन्हें सवाँई आश्रम पहुंचकर, उसे केन्द्र बनाकर व्यापक योग-प्रचार करने का आदेश दिया। वे अपने गुरु के इस आदेश को शिरोधार्य करके सवाँई धाम को केन्द्र बनाकर योग-प्रचार के कार्य में संलग्न हो गये। कौन नहीं जानता कि अपने तप त्याग और व्यापक योग-प्रचार के बल पर ही उन्होंने सवांईधाम का एक आदर्श योग-शिक्षण संस्थान के रूपमें विस्तार किया और सारे देश में "योग का सन्देश पहुंचाकर अपने गुरुदेव की आज्ञा को सार्थक करके दिखाया।" सिद्धगुफा 'सवांई धाम' का योग-प्रचार संदेश न केवल देश के कोने-कोने में फैला, बल्कि विदेशी शिष्यों को दीक्षित करके उनके द्वारा उसे विदेशोंमें भी पहुंचाया गया।

उनके तप, त्याग और योग-सिद्धि के बलसे सवांई आश्रम आगे चलकर अभूतपूर्व सिद्धपीठ के रूप में प्रसिद्ध होगा ऐसा हमारा विश्वास है। आश्रम के कण-कण में वे रमे हुए हैं और श्रद्धावान साधकों को सदैव अपने विराट सूक्ष्म रूप का दर्शन कराते रहेंगे। आश्रमवासी सभी साधक ब्रह्मचारियों का कर्त्तव्य है कि वे अपने गुरुदेव की इस अमूल्य धरोहर की सब प्रकार से सुरक्षा व उन्नति करके अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहें।

उनकी कृपाओं की प्रत्येक घटना हमें योग-मार्ग पर बढ़ने की प्रेरणा देती रहेंगी। इस आशा से मैं यहाँ एकाध उनकी लीलापूर्ण घटना का उल्लेख करना चाहती हूं।

श्री गुरुदेव महाराज की कृपा से हम लोगों ने सत्संग करना आरम्भ किया जिसमें प्रभुजी की कृपाओं के प्रत्यक्ष अनुभव होते रहते हैं।

इसी माह की घटना है। सप्ताह का द्वितीय सत्संग चल रहा था। उसमें हमारी

बहन जो हमारे समुदाय की भी नहीं है, आयीं। उन्हें अनुभव हुआ कि आसन पर एक दिव्य सन्त विराजमान हैं। जिनका गौर वर्ण है तथा लम्बी जटायें एवं दाढ़ी भी थी। उनके शरीर से शुभ्र प्रकाश की किरणें निकल कर चारों ओर फैल रही थीं। इस प्रकार उन्हें हमारे सत्संगमें प्रभुजी के प्रत्यक्ष दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके स्नेह भरे भजनों से प्रभुजी एवं गुरुदेवजी अत्यधिक प्रसन्न हुए। लेकिन किसी कारणवश उनको सत्संग की समाप्ति से पूर्व ही जाना पड़ा। बाद में जब हम प्रसाद देने गये तो उन्होंने हमसे पूछा—क्या आपने किसी संत को सत्संग में बुलाया था? मैंने कहा कि हमारा सत्संग संतों का ही सत्संग है उसमें संतों के दर्शन होना स्वाभाविक रहता है।

सत्संग में आई बहन का उन्होंने उपरोक्त वर्णन हमें सुनाया तो उन दयामय करुणा-सागर की अकारण कृपा करने से हम सबका हृदय बरबस ही पुलकित हो उठा, हमारा रोम-रोम कृतज्ञ हो गया।

योगयोगेश्वर भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी के जन्माष्टमी पर्व पर हमने सत्संग किया। उस दिन भी सभी के मन एकाग्र हुए एवं ध्यानस्थिति बनी। इसमें हम सभीने भगवान श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का गुणगान किया। फलस्वरूप हम सभी को भगवान बाल श्रीकृष्ण के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे छोटे बालक की तरह घुटनों पर चलते-फिरते दृष्टिगोचर हुए। वे कृपामय कभी-कभी हम अकिंचनों पर अपनी अत्यन्त स्नेह भरी दृष्टि डालते जाते थे, जिससे हमारे संतप्त हृदय को अपरिमित शांति एवं बल मिल रहा था। इसके साथ ही हमारे कृपानिधान श्री गुरुदेवजी ने भी दर्शन दिये। उन्होंने कृपापूर्वक प्रसाद पर अपनी कृपामयी दृष्टि डालकर उसको अमृत बनाया और स्वाभाविक मन्द-मन्द मुस्कान सहित अपने आसन पर विराजमान हो गये। रात्रि के बारह बजे तक सत्संग चलता रहा। महाराज श्री के दर्शन उस अवधि में निरन्तर होते रहे, उनके हार्दिक उल्लाससे हमारे सत्संग लगाने का प्रयास पूर्णरूपेण सफल हो गया। महा-राजजी सदैव भगवान श्रीकृष्ण तत्व में लीन

(● शेष पृष्ठ ४३ पर)

(पृष्ठ ४० का शेष)

की गिनती "राम" का प्रतीक है और "राम +राम"=५४+५४=१०८ होते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि अध्यात्म से 'राम' शब्द का कितना गहरा सम्बन्ध है और 'राम' कितना सार्थक शब्द है।

यहाँ आलोचक जनों की शंका हो सकती है कि 'र' २७वाँ अक्षर है और 'म' २५वाँ अक्षर है तो 'म' पहिले और 'र' बाद में क्यों नहीं रखा गया?

इसके लिए यह कहना पर्याप्त होगा कि 'र' का महत्व 'म' की अपेक्षा अधिक है, क्योंकि 'र' किसी भी अक्षर के ऊपर भी लगता है और नीचे भी। अतः 'र' आदि से अन्त तक व्याप्त है, जबकि 'म' की अतिरिक्त क्षमता केवल नीचे लगने की है।

इसके साथ यही निवेदन है कि 'राम' नाम को नामों के साथ जोड़ते हुए अभिवादन में हम "राम" का प्रयोग किया करें। इस 'राम' शब्द से परस्पर अभिवादन में ईश्वर की भक्ति-भावना का परिचय तो मिलता ही है, साथ ही ईश्वर के तथा प्रभुजी नाम का प्रेमपूर्वक बारम्बार उच्चारण ही मनुष्य योनि का कल्याण मार्ग है।

डा० ऋषिराज वाशिष्ठ

योगः चित्त-वृत्ति निरोधः

योग सूत्रकार मुनिवर पतंजलि ने योग की परिभाषा में उल्लेख किया है कि 'चित्त-वृत्ति का निरोध' ही योग है। शास्त्रों में उल्लेख है।

विषया सम्बन्ध चित्तस्य
या परिणति सावृत्तिः।
तस्या निरोधः स्व-
कारणे लघु योगः ।।

अर्थात्—विषय सम्बन्ध में लिप्त होने के पश्चात् चित्त की जो परिणित होती है उसी को वृत्ति कहते हैं और इन चित्त वृत्तियों का निरोध ही योग है। अब प्रश्न उठ सकता है कि चित्त क्या है। साधारणतया मन की सूक्ष्मावस्था को चित्त कहते हैं। यह चित्त या मन ही शरीर रूपी साम्राज्य का राजा है। क्योंकि मन के निर्देश से ही शरीर को चलना पड़ता है। यही मन (चित्त) अति शक्तिशाली होता है। इसे सम्भालना या स्थिर करना बहुत ही कठिन है परन्तु योगाभ्यास के द्वारा मन को सहज ही वशीभूत किया जा सकता है। चित्त इतना चंचल है कि निद्रावस्था में भी वह काम किया करता। साधारणतया मन दो प्रकारका होता है सचेतन मन और अचेतन मन। व्यक्ति जब जागृत अवस्था में रहता है तब सचेतन मन काम करता है और अवचेतन मन निद्रावस्था में काम किया करता है। उदाहरणस्वरूप यों भी कह सकते हैं कि मन एक समुद्र है। इस समुद्र में वायु का आघात लगने से जो तरंगें पैदा होती हैं वही वृत्ति कही जाती है।

वायु के अभाव में जैसे समुद्र स्थिर रहता है ऐसे ही मन वायु रूपी विषय-वासना रहित हो जाता है तो समुद्र रूपी मन भी स्थिर हो जाता है। इसी को चित्त-वृत्ति-निरोध कहते हैं।

वृत्ति प्रायः तीन गुणों के प्रभाव से प्रभावित होती है ये तीन गुण सत्व,रज,तम हैं चित्त जब सत्व गुण आश्रित होताहै तो व्यक्ति ज्ञान स्व-भावयुक्त हो जाता है अब चित्त रज-गुणाश्रित हो जाती है तो और जब चित्त तमोगुणाश्रित होता है तो अज्ञानता अधर्म हिंसा क्रोध-प्राप्त होता है और सत्व रज एवं तम रहित हो जाते हैं तो व्यक्ति स्वयं में प्रतिष्ठित हो जाते हैं मन और पुरुष भिन्न ज्ञात होता है जिसे विवेक ख्याति कहते हैं वृत्ति के बारे में विश्लेषण करने के पश्चात् चित्त की अवस्था के बारे में विश्लेषण आवश्यक है। यही चित्ता-वस्था ५ भागों में विभक्त है। यथा—

१. मूढ़ावस्था।
२. [illegible]।
३. विक्षप्तावस्था।
४. एकाग्रावस्था।
५. निद्रावस्था।

१. मूढ़ावस्था—चित्त या मन जब ज्ञान-रहित होकर काम, क्रोधके वशीभुत हो जाता हैं तो निद्रा आलस्य का शिकार बनता है।

उस दशा को ही मूढ़ावस्था कहते हैं इसी समय व्यक्ति तमोगुणाश्रित होता है। अर्थात् सभी प्रकार अज्ञानता में लिप्त हो जाता है। समाज में ऐसी प्रकृति के मनुष्यों के अन्दर ही ऐसी स्थिति दिखाई देती है।

२. क्षिप्तावस्था—मन की अस्थिर अवस्था अवस्था को कहते हैं अर्थात मन एक विषय में स्थिर न होकर शनैः शनैः विभिन्न विषयों में परिवर्तित होता है इसी समय मन या चित्त रजोगुण सम्पन्न होता है। इसलिए राग-द्वेष धर्म-अधर्म अनुराग-विराग; ज्ञान-अज्ञान, इत्यादि में प्रवाहित होता है जो कि साधारण मनुष्यों के अन्दर दिखलाई पड़ता है।

३. विक्षिप्तावस्था—चित्त की क्षिप्त एवं विक्षिप्तावस्था के बीच में अन्तर बहुत ही कम है अर्थात् चंचलता के बीच में कुछ समय के लिए स्थिर भाव होता है इसलिए इस अवस्था में व्यक्ति कभी-कभी अच्छा काम भी करता है। साधारणतया इस स्थितिमें व्यक्ति के अन्दर में दो गुण कार्य करते हैं रज और सत्व। समाज में उच्च प्रकृति के व्यक्ति के अन्दर यह स्थित दिखाई पड़ती है जब रजो-गुण का प्रभाव बढ़ता है तब व्यक्ति के अन्दर काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि भाव दिखाई पड़ते हैं और जब सतोगुण का प्रभाव होता है तब व्यक्ति के अन्दर धर्म, ज्ञान, प्रसन्नता, क्षमा, चैतन्य, दान, दया आदि के भाव दिखाई देते हैं।

४. एकाग्रावस्था—चित्त जब कोई अन्तर वस्तु एवं बाह्य वस्तु में स्थिर होता है या निश्चल होता है उसी अवस्था को चित्त की एकाग्रावस्था कहते हैं। इसी अवस्था में चित्त सत्वगुण में स्थिर होता है मन या चित्त एक ही दिशा में चलते है इसी अवस्था में चित्त या मन निर्मल हो जाते हैं जो कि योगी के बीच में ही दिखाई देते हैं इसी अवस्था की अन्तिम स्थिति को सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं।

५. निरुद्धावस्था—एकाग्रावस्था के साथ निरुद्धावस्था में बहुत बड़ा अन्तर है। एकाग्रा-वस्था में किसी अवलम्बन की आवश्यकता होती है जिसके ऊपर साधक का लक्ष्य स्थिर होता है लेकिन निरुद्धावस्था में किसी अव-लम्बनकी आवश्यकता नहीं रहे। इस स्थिति में चित्त आत्म स्वरूप में स्थित होता है अविद्या आदि पंच क्लेशों का विनाश होता है इस अवस्था को ही असम्प्रज्ञात समाधि होती है।

उपरोक्त चित्त की ५ अवस्थाओं से विभिन्न प्रकारकी वृत्तियों की उत्पत्ति होती है जो कि

(● पृष्ठ ४२ का शेष)

रहा करते थे। इस कारण उन्होंने व्रज-भूमि को ही अपनी तपस्थली बनाया था। वे अपने भाषण में भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा गीता-सन्देश का उपयोगी तत्व समझाया करते थे। पूज्य श्री गुरुदेवजी महाराज सदैव कृष्णभाव में लीन रहा करते थे, जिसका अनुभव केवल उनके ध्यानी बच्चों को ही हुआ करता था। वे पूर्ण सामर्थ्यवान् थे, लेकिन यह उनकी महानता थी कि वे अपने लिए कोई श्रेय न लेकर अपने बच्चों को ही दे दिया करते थे।

उन्होंने देहली में भी एक विशाल आश्रम की स्थापना की। हम सब श्री गुरुदेवजी के चरण-कमलों में प्रार्थना करते हैं कि हमारे गिरे हुए मनोबल को सबल बनाये रहें।

★

असंख्य है योग शास्त्र में इन विभिन्न वृत्तियों को ५ भागों में विभक्त किया है :—

१. प्रमाण ।
२. विपर्यय ।
३. विकल्प ।
४. निद्रा ।
५. स्मृति ।

१. प्रमाण—ज्ञान का साधन ही प्रमाण है इस प्रमाण वृत्ति को ३ भागों में विभक्त किया गया है ।

(१) प्रत्यक्ष (२) अनुमान (३) आगम ।

(१) प्रत्यक्ष—अपने चक्षु से अवलोकन करना ही प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

(२) अनुमान—जो विचार द्वारा मनन करके निश्चय करते हैं ।

(३) आगम—जो वेद शास्त्र द्वारा प्रमाणित और वर्णित है ।

२. विपर्यय—मिथ्या ज्ञान को विपर्यय कहते है । रज्जू को देखकर सर्प का भ्रम होना अर्थात् रस्सी को देखकर सर्प भ्रम से जो मन विचलित होता है वही विपर्यय है ।

३. विकल्प—जो अस्वाभाविक कल्पना के द्वारा अनुभव मे आता है जो साधारण-तया शब्द या अक्षर के मात्र ऊपर स्थित हो वास्तविकता पर नहीं । जैसा—खरगोश के सींग । वास्तव में नहीं हैं । इसीको विकल्प कहते हैं ।

४. निद्रा—शरीर जिस अवस्था में चेतना शून्य हो जाता है उसी अवस्था को निद्रा कहते हैं । इसी निद्रावस्था में मनुष्य विभिन्न सपनों को देखकर विचलित होता है जिससे चित्त की चञ्चलता में वृद्धि होती है ।

५. स्मृति—अतीत की किसी घटना को याद करके मन में जो विचलित भाव होता है उसी भाव को स्मृति कहते हैं, इससे चित्त चंचल बनता है ।

उपरोक्त ५ चित्त की अवस्था एवं ५ वृत्तियों के कारण मनुष्य दुःख भोगते हैं यही अवस्था एवं वृत्ति समूह दोनों मिलकर व्यक्ति को सुख-दुःख, राग-द्वेष, जय-पराजय आदि के मार्ग में ले चलते हैं । इसके फल-स्वरूप मनुष्य वास्तविक लक्ष्य से भटक कर गलत रास्ते में पदार्पण करते हैं । परिणाम-स्वरूप वे परमात्मा के सुख से वंचित होते हैं इसलिए योग दर्शन ने उल्लेख किया है कि—"योगश्चित्त वृत्ति निरोधः" अर्थात् चित्त वृत्ति समूहों का निरोध ही योग है ।

—: यो वै भूमा तत् सुखम् :—

देह की कोठरी में हम कैद हैं । बंधन खुलने के लिए अन्तरात्मा छटपटा रही है । शान्ति, समाधान खोज रही है । व्यापकता के अनुभव में ही शांति, सुख है ।

सरोवर के जल के बीच रखा हुआ घड़ा । भीतर पानी, बाहर पानी—दोनों का मेल नहीं । घड़ा फूटा कि दोनों पानी मिलकर एक रस हो जाते हैं । जैसे हर पिण्ड में, ब्रह्माण्ड में, व्याप्त जो सत्ता है, उसका स्पर्श देह के भीतर रहते भी हर एक जीवधारी को कुछ न कुछ निरन्तर हो रहा है ।

—उपनिषद्सार

● श्री देवीसिंह सिसोदिया

आत्मा और परमात्मा की भिन्नता

[आत्मा और परमात्मा दो अलग-अलग तत्व हैं या दोनों अभिन्न हैं ? इस जिज्ञासा का समाधान भारतीय दर्शनकारों ने अपने-अपने अनुभव और चिन्तन के आधार पर करके अद्वैतवाद, द्वैतवाद और त्रैतवाद के सिद्धान्तों को प्रबुद्धजन-मानस के सामने उपस्थित किया है। बौद्ध और जैन-दर्शन आत्म तत्व से पृथक परमात्म तत्व की कोई सत्ता मानते ही नहीं हैं। वेद, उपनिषद, गीता और पातंजल योग-दर्शन में त्रैतवाद का ही प्रतिपादन प्रायः मिलता है। आचार्य शङ्कर का सिद्धान्त एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति जग-जाहिर है। महर्षि पतंजलि ने पुरुष और पुरुष विशेष ईश्वर रूप में आत्मा और परमात्मा की दो अलग-अलग सत्ता स्वीकारी है। दोनों तत्वों का पृथक्करण किन आधारों पर अवलम्बित है लेखक-बन्धु ने इसी विचार को सरल भाषा में—प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। —सम्पादक]

भगवान या परमात्मा और आत्मा दोनों अलग-अलग सत्तायें हैं।

परमात्मा एक है जिसने सृष्टि की संरचना की है और आत्मा एक नहीं अनेक हैं, जिनके लिए सृष्टि की रचना की गई है।

परमात्मा ज्ञानस्वरूप है सारा ज्ञान इसी से उद्भूत होता है और आत्मा वह है जो ज्ञान से लाभान्वित होता है। परमात्मा धर्म की स्थापना करता है और आत्मायें धर्म का पालन, या उल्लंघन करके कर्मफल-भोग की भागी बनती हैं।

पुरुष-विशेष परमात्मा क्लेश कर्म विपाकादि से सदा अछूता रहता है। जबकि जीव या आत्मा सदा इनसे आवृत रहता है। योग-साधन द्वारा प्राप्त मोक्ष अवस्था में ही वह भव-बन्धन से मुक्त हो पाता है।

गीता के १३वें अध्याय में जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण बता रहे हैं—

इदं शरीरं कौन्तेय,
क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः,
क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि,
सर्वक्षेत्रेषु भारत !
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं,
यत्तज्ज्ञानं मतं मम॥
(गीता १३/२-३)

अर्थात् हे पार्थ ! यह शरीर क्षेत्र कहलाता है और इसे जो जानता उसे ज्ञानीजन क्षेत्रज्ञ कहते हैं।

और मैं (परमात्मा) सब देहोंको जानने और उनमें रहने के कारण क्षेत्रज्ञ कहलाता हूँ।

दोनों ही क्षेत्रज्ञ हैं पर उपरोक्त श्लोकों में दोनों क्षेत्रज्ञों के भेद का विश्लेषण भी कर दिया गया है। एक क्षेत्रज्ञ केवल एक देह में रहकर उसमें होनेवाले परिवर्तनों को जानता है, किन्तु संसार की सब देहों में निवास करने वाला और उनके सब परिवर्तनों का ज्ञान रखने वाला जो दूसरा क्षेत्रज्ञ है उसे परम क्षेत्रज्ञ या परमात्मा कहा जाता है।

जीवात्मा और परमात्मा दोनों अलग-अलग हैं, यह स्वयं भगवान समझा रहे हैं। गीता में आत्मा और परमात्मा की भिन्नता के और भी अनेक प्रमाण पाये जाते हैं।

वैशेषिक-दर्शन में आत्मा का परिचय या लक्षण बतलाते हुए कहा गया है—

इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख-दुःख ज्ञाना-नान्यात्मनो लिङ्गम्।

इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दुःख और ज्ञान आत्मा के चिह्न हैं यानी परिचायक हैं।

इसके अतिरिक्त प्राण—प्राणवायु को बाहर निकालना, बाहरसे भीतर लेना निमेष उन्मेष आदि। निश्चय, स्मरण, अहङ्कार, क्षुधा, तृष्णा आदि का लगना शरीरधारी आत्मा के ही धर्म हैं, जबकि परमात्मा निर्गुण निराकार निरेन्द्रिय है। साथ ही परमात्मा अतुलित ऐश्वर्य, शक्ति, बल और पराक्रमशाली है। आत्मा निराकार रहते हुए भी देह आश्रित रहता है, यह सीमित बल, शक्ति तथा ऐश्वर्य वाला होने से ही इनकी वृद्धि के लिए परमात्मा का आश्रय लेता है। गीता का यह श्लोक भी विचारणीय तथा पठनीय है—

मत्तः परतरं नान्य-
किञ्चिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं,
सूत्रे मणिगणा इव ॥

(गीता ७/७)

यहाँ मुझसे ऊपर या श्रेष्ठ कहीं कुछ भी नहीं है। सूत्र में ग्रथित मणियों की भाँति सब कुछ मेरे ही आश्रित है।

यह कथन स्पष्ट रूप से परमात्मा की श्रेष्ठता, ज्येष्ठता और उत्कृष्टता का परिचायक है। अन्य सब जगत जो दृष्टिगोचर है, जिसमें आत्म तत्व भी शामिल है, उस परमात्मा के सहारे पर ही टिका हुआ है। अतः वह उस परमात्मा से अलग तो है ही, साथ ही उससे निम्नता और सीमित शक्ति वाला भी है।

योग-दर्शन में तो जीवात्मा को परमात्मा से अलग कर्मफल भोक्ता मानकर बन्धन से छूटने का एकमात्र उपाय परमात्मा में युक्त हो जाना ही बतलाया है। समाधि में इसी आनन्दघन परम तत्व परमात्मा की स्पष्ट अनुभूति का आनन्द योगी लोग उठाया करते हैं।

---

* मूढ़ अपने हृदय में अनुभव करता है कि धन ही परम कल्याणकारी तथा सुख का एकमात्र मार्ग है। वास्तव में वह अज्ञान, दुःख और सभी प्रकार की दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियों का जनक है। —स्वामी विवेकानन्द

सत्यं शिवं सुन्दरम्

हृदय क्या है ?

जहाँ से समस्त वृत्तियाँ निकलती हैं, वह हृदय कहा जाता है। हृदय की आकृति का वर्णन मानसी वृत्ति मात्र है।

× × × ×

अहंवृत्ति अखिल वृत्तियों का मूल कही जाती है। जहाँ से अहंवृत्ति निकलती है, संक्षेप में वही हृदय है।

× × × ×

हृदय रक्त-पिण्ड से पृथक ही है। 'यही केन्द्र है' यही शब्द की व्युत्पत्ति है। अतः हृदय आत्मा का रूप कहा गया है।

× × × ×

उसका (हृदय का) स्थान छातीमें दाहिनी ओर है, बांई ओर नहीं। उसी हृदय से सुषुम्नानाड़ी द्वारा मस्तिष्क को ज्योति बहती है।

× × × ×

वह ज्योति मस्तिष्क से सम्पूर्ण देह को बहती है तब विश्व की अनुभूतियाँ होती हैं। उन अनुभूतियों को भेद बुद्धि से देखता हुआ मनुष्य संसारी होता है।

× × × ×

आत्म स्वरूप में ज्ञानी का मस्तिष्क शुद्ध तथा प्रकाशपूर्ण होता है, वहाँ यदि संकल्प निकट पहुंच जावे, तो जीवित नहीं रह सकता।

× × × ×

यद्यपि इन्द्रियों के विषय निकट से ग्रहण किये भी जावें तथापि भेद दृष्टि के अभाव के कारण मन योग के लिए बाधा उपस्थित नहीं करता।

× × × ×

इन्द्रियों के विषयों को ग्रहण करने वाले (पुरुष की) स्थिर एकबुद्धि सहज स्थिति कहलाती है; किन्तु विषयों के ग्रहण न करने पर वही निर्विकल्प समाधि कही जाती है।

× × × ×

शरीर में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है और सम्पूर्ण शरीर हृदय में है। इसलिए समस्त ब्रह्माण्ड के रूप का संग्रहालय हृदय ही है। —श्री महर्षि रमण

(● पृष्ठ ३ का शेष)

यस्मा जाग्रति भूतानि
सा निशा पश्यतो मुनेः ।।

अर्थात् संसार के सब प्राणियों की जो रात है मुनि लोग उसमें जगते रहते हैं और जिसमें मुनि लोग जागते हैं उसमें संसार के सभी लोग सोते रहते हैं एक प्रकारसे इन्द्रियों के भीतरी भाग से दृश्य को देखने का अर्थ संप्रज्ञात योग है। अन्तर्दृष्टि से दृश्य के देखने में वृत्तियों का उपशमन होता रहता है। बाह्य दृष्टि से देखनेमें वृत्ति और संस्कार आशय का उत्तरोत्तर जनन होता रहता है। क्लेश बनते रहते हैं और मनुष्य जन्म और मरण के चक्र में पड़ा रहता है और यदि साधक अन्तर्जगत में प्रवेश करके अन्तर्जगत द्रष्टा बन जाता है तो वहाँ पर वृत्तियाँ संस्कारों की जन्मदात्री न बन करके क्षीण होती चली जाती हैं अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधि में क्लेशों का तन्वीकरण हो जाता है और धीरे-धीरे फिर यह अपवर्ग का जनक बन जाता है। भगवान पतञ्जलिदेव अपने एक सूत्र में कहते हैं कि—

ध्यान हेयास्तद वृत्तयः

अर्थात् वह सारी की सारी वृत्तियाँ ध्यान के द्वारा हटाई जा सकती हैं। ध्यान द्वारा अर्थात संप्रज्ञात समाधिके द्वारा इनका तन्वीकरण हो जाने के बाद मनुष्य मुक्ति-मार्ग की ओर बढ़ जाता है।

क्लेशों की जो स्थूल वृत्तियाँ हैं उनका तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान रूप क्रिया योग के द्वारा तन्वीकरण हो जाने पर उन्हें प्रसंख्यान बल से ध्यानयोग के द्वारा हटाया जा सकता है। ध्यानाभ्यास के द्वारा जितना-जितना उनका सूक्ष्मीकरण हो जायगा उतनी-उतनी वे सब दग्ध-बीज दशा की ओर बढ़ती चली जायेंगी और बाद में समाधि के बल से बिल्कुल निर्बीजता को प्राप्त हो जायेंगी। उदाहरण से इस बात को इस प्रकार समझ लेना चाहिए कि एक व्यक्ति बहुत मैले कपड़े को धोकर साफ कर लेता है, किन्तु फिर भी यदि उसमें सूक्ष्म धूल अर्थात् धब्बे आदि कुछ रह जाते हैं तो वह सब रंग-काट आदि दूसरे उपायों से साफ किये जा सकते हैं। इसी प्रकार ध्यानयोग के द्वारा साधक अपनी वृत्ति का शमन कर लेता है, किन्तु फिर भी यदि अंशमात्र कुछ रह जाता है तो वह प्रसंख्यान बल से दग्धबीज होकर लय हो जाया करता है। उसीके लिए भगवान पतंजलिदेव ने स्पष्ट कहा है—

ते प्रतिप्रसवहेयः सूक्ष्माः

अर्थात् वृत्तियों के सूक्ष्म अवशेष जो रह जाते हैं वह सब लयता के द्वारा समाप्त हो जाते हैं।

ध्यानयोग के द्वारा दग्धबीज के समान हुए वे क्लेश, जिस योगी का चित्त प्रसंख्यान बल से अर्थात निर्बीज समाधि तक पहुँच जाने के बाद चित्त अधिकार समाप्त हो जाता है। समाधिकी नीचेकी भूमिकाओं में चित्त थोड़ा-थोड़ा काम करता रहता है, किन्तु जहाँ पर निर्बीज समाधि का उदय हुआ वहाँ पर चित्त का अधिकार भी समाप्त हो जाता है, इससे आगे जाने का तो कोई अधिकार है ही नहीं। उसका परिणाम यह होता है कि चित्त अपनी मूल प्रकृतिमें जाकर समाप्त हो जाता है और उसके साथ-साथ क्रियायोग के द्वारा जो चित्त वृत्तियाँ भी उस चित्त के साथ ही विलीन हो जाया करती हैं। अतः क्लेशोंका समूलोन्मूलन का एकमात्र मूल साधनयोग ही है। जिसको पाकर साधक परम शाश्वत शान्ति को उपलब्ध कर लेता है। ●

प्रेषक कार्यालय :—

सि | द्ध | यो | ग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर)

आगरा ।

PRINTED MATTER

Book-Post

श्री 1925

सुरेन्द्र कुमार त्रिपाठी

श्री एम. डी. दण्डोतिया सरकारी वकील

का मकान गणेशपुरा मुरैना म. प्र.

सूर्य में संयम क्या

"सूर्य में संयम करने से भुवन का ज्ञान हो जाता है" । शरीर के अन्दर, जो रीढ़ की हड्डी में, नाड़ी है उसे सुषुम्णा या ध्रुव कहते हैं और उसके इधर-उधर जो नाड़ियां हैं उन्हें इडा और पिंगला कहते हैं । इन्हीं का पारिभाषिक नाम ध्रुव, चन्द्र और सूर्य है, इन्हीं नाड़ियों में से सूर्य नाड़ी में संयम करने से भुवन का ज्ञान हो जाता है । यह बात कुछ भी आश्चर्य की नहीं रहती । संयम का अर्थ है विधिपूर्वक साधन करने का अभ्यास करना ।

—योगिराज श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ ताजगंज, आगरा । Ph. 360426